तृतीय अध्याय

''हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में चित्रित दलित समस्याएँ''

तृतीय अध्याय

"हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में चित्रित दलित समस्याएँ"

(खारे जल का गाँव, मोंगरा, सुबह की तलाश, जंगल के आसपास के संदर्भ में)

1) साहित्य और समस्या का संबंध ।

2) दलितों की समस्याएँ ।

3) अंध:विश्वास की समस्या ।

4) शकुन-अपशकुन की समस्या ।

5) शोषण की समस्या ।

6) जनआंदोलन की समस्या ।

7) नारी शोषण की समस्या ।

8) यौनसंबंध और अवैध धंधों की समस्या ।

9) जातीय भेदाभेद की समस्या ।

10) भ्रष्टाचार की समस्या ।

11) अशिक्षा की समस्या ।

12) निष्कर्ष

तृतीय अध्याय

"हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में चित्रित दलित समस्याएँ"

(खारे जल का गाँव, मोंगरा, सुबह की तलाश, जंगल के आसपास के संदर्भ में)

मानव एक सामाजिक प्राणी है। मानव ने अपनी विभिन्न जैविक और मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया। इस व्यवस्था में हर एक मनुष्य दूसरे पर निर्भर है। इसीकारण मानव अपना जीवन समूह में बीताता है। "विभिन्न सामाजिक समूह में रहकर मानव अपना विकास करता है। अपने गुण-दोषों का परिष्कार करता है। साथ-ही-साथ वह अपनी संस्कृति समुन्नत करता है। अतः इसे 'सामूहिक प्राणी' भी कहा जाता है।"[1] मनुष्य के कारण समाज का निर्माण हुआ। धीरे-धीरे समाज ने कुछ नियम बनाये, जिसका प्रयोग जीवन में होने लगा। अनपढ़, अज्ञानी लोगों ने इसी सामाजिक पहेलुओं को अधिक महत्व दिया , परिणामतः अंधश्रध्दा का निर्माण हुआ। जमींदारों, धार्मिक व्यक्तियों के हाथ में सत्ता रहने के कारण अनपढ़ तथा दलितों का शोषण होता रहा। ग्रामवासी लोग रुढ़ि-परंपरा का जी जान से पालन करते रहे। आर्थिक स्थिती दयनीय रही। उद्योग धंधे अंग्रेजी नीति के शिकार रहे। वर्णव्यवस्था भी हावी रही। परिणामतः छुआछूत की समस्या निर्माण हुअी। समाज में पिसा जानेवाला वर्ग अछूत माना गया। उन्हें धार्मिक, सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा गया। धीरे-धीरे जातीयता की निर्मिती हो गयी। ग्रामांचलों में जातीयता इतनी मजबूत हो गई की लोग एकदूसरे को जाती से ही पहचानने लगे। इसीतरह ग्रामजीवन में, समाजजीवन में कई समस्याएँ निर्माण हो गयी।

1) साहित्य और समस्या का संबंध :-

समाज में उत्पन्न समस्याओं को साहित्य में स्थान देने का कार्य साहित्यिकारों ने किया। प्रेमचंद, नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, रेणु, रामदरश मिश्र, जगदीशचंद्र, राही मासूम रजा, श्रीलाल शुक्ल आदि जैसे मूर्धन्य साहित्यिकारों ने अपनी कृतियों में इसे चित्रित किया। 'वरदान', 'प्रेमाश्रय', 'गोदान', 'जुलूस', 'परती परिकथा', 'दुखमोचन', 'बाबा बटेसरनाथ', 'कब तक पुकारुँ', 'गंगा मैया', 'जंजीर और नया आदमी', 'आधा गाँव', 'धरती धन न अपना', 'रागदरबारी' आदि कई महत्वपूर्ण कृतियाँ है। इसमें दलित जीवन, उनकी समस्या, समाज की स्थिति, सामाजिक समस्या आदि का यथार्थ चित्रण हुआ है। प्रेमचंद उपन्यास सम्राट एवं सफल साहित्यिकार है। इसका कारण स्पष्ट करते हुए डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय कहते है - "प्रेमचंदजीने व्यक्ति की ओर जितना ध्यान नहीं दिया जितना की समस्या की ओर।"[2] अत: स्पष्ट है कि सफल साहित्यिकार सामाजिक समस्याओं का चितेरा होता है।

मानवजीवन विकसित हो रहा है। नए शोध, संशोधन, प्रगति के साधन, सरकार की सुधार नीति के कारण समाजजीवन में धीरे-धीरे विकास एवं परिवर्तन हो रहा है। अनपढ़, आवारा, ग्रामीण युवा, दलित अब चेतित हो रहा है। विकास और समस्या का संबंध रहा है। बिना समस्या से विकास नहीं होता। यह सच है कि कुछ समस्याएँ मानव निर्मित है तो कुछ प्राकृतिक है। संघर्ष का फल मिठा होता है। साहित्यिकारों ने अपनी कृतियों में मानव जीवन में स्थित समस्याओं पर प्रकाश डाला है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में ग्रामजीवन की स्थिती, दलितों की स्थितिपर भी सोचा है।

औद्योगिकरण, यांत्रिकीकरण, नागरीकरण के कारण समाज व्यवस्था में परिवर्तन हुआ। अर्थव्यवस्था में बदलाव आया। आर्थिक स्तर भी बदला। परिणामत: आपसी भाईचारा, प्रेमसंबंध में टूटनशीलता आयी। धार्मिकता ने सांप्रदायिकता का रुप लिया, तो बेकारी, बेरोजगारी ने अनैतिकता को बढ़ावा दिया। धनपिपासा ने भ्रष्टाचार को जनम दिया। अत: स्पष्ट है एक

समस्या से दूसरी समस्या पैदा होती रही। अतः आजादी के पश्चात् बदली समाजव्यवस्था तथा मानसिकता ने कई समस्याओं को बढ़ावा दिया। परिणामतः 1947 के पश्चात का समाज जीवन, मानव जीवन 'समस्याओं की गाथा' बना है, ऐसा लगता है।

स्वातंत्र्योत्तरकालीन सामाजिक परिस्थिति के साथ-ही-साथ साहित्यिक परिस्थितियों में भी परिवर्तन हुआ। नये विचार, नये सिध्दांत, नये वाद साहित्य में स्थापित होने लगे। मजदूर, किसान, नारी, दलित, पीड़ित, विधवा आदि की व्यथा को वाणी देने का कार्य साहित्य के माध्यम से होने लगा। 'गोदान' का होरी, 'रंगभूमि' का सूरदास, 'मोंगरा' का मंगलू, 'गंगा मैया' का मटरु, 'परती परिकथा' का जितेंद्र, 'बलचनमा' का बलचनमा, 'दुःखमोचन' की माया, 'उग्रतारा' की उगनी बाल विधवा, 'कब तक पुकारुँ' की धूपो, सुखराम, 'धरती' का मोहन, 'पानी के प्राचीर' का नीरु आदि पात्र साहित्यिकारों के विचारों के वाहक है। समाजजीवन का चित्रण करने में वे सशक्त लगते है।

साहित्यिकार एक सामाजिक प्राणी भी है। समाज का बदला हुआ रुप, समाज की बदली मानसिकता को साहित्य में चित्रित करने का कार्य भी साहित्यिकार करता है। समाज जीवन में आनेवाले नये प्रवाह-वाद का भी वह स्विकार करता है। 'दलित साहित्य' इसका अच्छा उदाहरण है। समाज में उत्पन्न समस्याओं से साहित्यिकार परिचित होता है। इसीकारण सांप्रदायिकता, अलगाववाद, भ्रष्टाचार, भाईभतिजावाद, भाषावाद आदि नई-नईं चुनौतियों का भी चित्रण साहित्य में होने लगा है। अतः स्पष्ट है साहित्य समकालिक, चिरंतन रहनेवाली व्यवस्था है। आलोच्य उपन्यासों में भी दलित जीवन, दलित जीवन की समस्या का कहाँ तक चित्रण हुआ है, इसपर हम यहाँ सोचेंगे।

2) दलितों की समस्याएँ :-

भारतीय समाज व्यवस्था में 'जाती' का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। 'जाती' एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें सामूहिकता, धार्मिकता दिखाई देती है। समाज जाती, धर्म, संप्रदाय

आदि रूपों में विभाजित रहा है। समाज मानव का समूह रहा है। मानव की रोटी, कपड़ा, मकान आदि बातें प्रधान है। इन्हीं बातों की आपूर्ति का प्रयास मानव करता आया है। जीवन जीते समय, अपनी बातें पूरी करते समय उसे संघर्ष करना पड़ता है। अत: जीवन का मूल तत्व संघर्ष माना है। समस्यापूर्ति का प्रयास मानव करता है। 'समस्या' अपने आप में चुनौती होती है। उसके कारण ही जीवन फलता है, फूलता है। समस्या के कारण सृजन, पुर्नसृजन एवं निर्माण का कार्य चलता आया है। हर एक की समस्या अलग-अलग रहती है। व्यक्तिगत समस्या के समान जातीगत समस्या भी रहती है। सामाजिक, शैक्षिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक स्तरपर अलग-अलग समस्याएँ रही है। इसके साथ-ही-साथ समाज व्यवस्था पर भी समस्याएँ निर्भर है। अत: दलित जनजाती की अपनी अलग-अलग समस्याएँ रही है।

स्वातंत्र्यपूर्व काल में ज्यों समस्याएँ थी, वह अब नहीं हैं तथा आजादी के पश्चात कई नई समस्याएँ भी बनी है, बढ़ी है ऐसा लगता है। स्वातंत्र्यपूर्व काल में आजादी का आंदोलन, स्वतंत्रता की माँग, गांधी, आंबेडकर, फुले का कार्य, समाजसेवी संस्थाओं का योगदान, नवजागरण आंदोलन, राष्ट्रीय चेतना एवं उदारमत का प्रभाव आदि के कारण समाज जीवन में हलचल रही तो दूसरी ओर अंग्रेजों की शोषण नीति, दमनपध्दति, भेदभाव की प्रवृत्ति में आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक स्तरपर चेतना जागृत हो गयी। संतों के विचारों से प्रभावित यह भारत देश विविधता में अपनी एकता बनाये रखने में सफल रहा। गांधी, आंबेडकरजी के नेतृत्व में पूरा समाज एक बना, आंदोलन में शामिल भी हुआ, सफल भी रहा। उसी समय छुआछूत, जातीयता, दारिद्र्यता आदि जैसी कई समस्याएँ दलितों में रही थी। आजादी की प्राप्ती के साथ नये सपने लेकर नया भारतवर्ष आया। नेहरू भाग्यविधाता बने, अपनी सरकार बनी। देश के नेता राजकाज चलाने लगे। अब देश का विकास यही लक्ष्य रहा परंतु समाज व्यवस्था में समस्याएँ बढ़ने ही लगी। दलितों में अपने हक के प्रति जागृति बढ़ने लगी। नयी शिक्षा, नया संविधान, सरकार की नयी नीति, नया नेतृत्व आदि के कारण दलितों के जीवन में परिवर्तन की हवा बहने लगी। नये वातावरण से चेतित दलित संगठीत होने लगा। अपने समाज को उन्नत करने में जुट गया। दलितों की सामान्यत: निम्न समस्याएँ है -

I) अज्ञान की समस्या :-

प्राचीन काल से मनुव्यवस्था का शिकार दलित रही है। इस व्यवस्था में सबसे निचला स्तर दलित माना है। परिणामत: शिक्षा में उसे वंचित रखा गया। न पाठशाला है न किताबें --- सिर्फ मजदूरी करना, भीख माँगना, कुलगिरी करना ही दलितों का जीवन रहा। अज्ञान एवं अशिक्षा सभी समस्या की जड़ होती है। महात्मा फुले, आंबेडकरजी ने इसे समझा और दलितों में शिक्षाप्रसार का कार्य किया। आज दलित समाज धीरे-धीरे शिक्षित बन रहा है। सरकार की नीति, आरक्षण, छात्रवृत्ति पाकर दलित साक्षर हो रहा है।

II) जातीयता एवं भेदाभेद की समस्या :-

उच्चनिचता की समस्या सिर्फ सवर्णों में है ऐसे नहीं,दलितों में इसके दर्शन होते है। चमार द्वारा मरार को हीन मानना, हरिजन का मोची से दूर रहना आदि इसका प्रमाण है। दलितों में भी अपनी-अपनी कुल, जात, वंश श्रेष्ठता बनी रही है। 'खारे जल का गाँव' में इसके दर्शन होते है। सवर्ण दलितों से दूर रहते है। तथा दलितों में भी एकता के दर्शन नहीं होते। अत: यह भी एक समस्या लगती है।

III) धार्मिक समस्या :-

धर्म के आधार पर भी दलितों में विवाद रहा है। हर एक गुठ की देवी-देवता अलग, धार्मिक मान्यता अलग, रूढ़ी-परंपरा अलग रही है। मंदिर प्रवेश निषिध माना गया, छूना पाप कहा गया। अत: ऐसे धार्मिक विचारों के कारण समाज में दरारें पड़ी। परिणामत: यह एक समस्या बन गयी।

IV) अर्थाभाव की समस्या :-

दलितों की एक प्रमुख समस्या अर्थाभाव है। मजदूरी, कुलगिरी करके जीवनयापन करने की उनकी प्रवृत्ति रही है। कम दाम पर वे अधिक काम, कड़ी मेहनत करने की उनकी

नीति रही है। दलित उदरपूर्ति के लिए निम्नस्तर का भी काम करते है। अर्थात उसे अपनी वे विरासत मानते है। उदरपूर्ति के लिए जंगलों पर निर्भर रहते है, इनकी आर्थिक स्थिति दुर्बल रहती है। आर्थिक दुर्बलता के कारण किसी वस्तु को या घर के एखाद व्यक्ति को भी गिरवी रखते हैं, उनकी दो-दो पीढ़ियाँ कर्ज के बोझ में दबी रहती है, वे टूटे-फूटे जूते पहनते है, कपडों को थिगरियाँ लगी रहती है, बालों को तेल नहीं मिलता। दरिद्रता के कारण पारिवारिक समस्याएँ बढ़ती है। सयानी लडकियों के विवाह नहीं होते हैं। लोग आर्थिक दुर्बलता के कारण पारिवारिक समस्याएँ सुलझाने के लिए अवैध धंधे भी करते हैं। ये लोग आर्थिक स्थिति में सुधार लाने का प्रयत्न भी करना चाहते है परंतु आर्थिक अभाव के कारण कुछ भी नहीं कर सकते। आर्थिक समस्या के बारे में रेवा कुलकर्णी का कथन है - ''स्त्रियों की दासता का सबसे बड़ा रूप उनकी आर्थिक दासता को ही माना जाता है।''[3] स्पष्ट है अर्थाभाव के कारण पारिवारिक, नैतिक, सांस्कृतिक समस्याएँ पैदा होती है।

V) सामाजिक समस्या :-

दलितों को अछूत मानकर उसे दूर रखा जाता है। उनका पनघट अलग, उनका समाजमंदिर, प्रार्थना स्थल भी अलग बनाया जाता है। शिक्षा व्यवस्था में पाठशाला के बाहर बिठाने की अमानवीय प्रवृत्ति दिखाई देती है। मंदिरों में प्रवेश नहीं मिलता, अर्थात सामाजिक स्तरपर दलितों को महत्व नहीं होता। आलोच्य उपन्यासों में 'खारे जल का गाँव', 'सुबह की तलाश', में इसपर प्रकाश डाला है। सामाजिक समस्या के कारण एकता खंडित होती है परंतु आज यह समस्या नहीं रही है। आज का पढ़ा, लिखा, नया चेतित युवा समाज मजहब, धर्म, झूठी मान्यता को स्विकार नहीं करता। आलोच्य उपन्यासों में इसके दर्शन होते है।

VI) राजनीतिक समस्या :-

भारतीय समाज व्यवस्था में राजनीति का काफी प्रभाव रहा है। विकास का एक सोपान राजनीति रही है तो कभी-कभी वह शोषण का आयाम भी बनी हैं। दलितों के जीवन में

राजनीति के वे दोहरे रूप दिखाई देते है। दलित नेतृत्व अब आगे बढ़ रहा है। सभी राजनीतिक दलों में आरक्षण, जातीय आरक्षण पर बल दिया जा रहा है। आर.पी.आय., दलित मुक्ति मोर्चा, बमसेफ आदि राजनीतिक संगठन बने परंतु यह सिर्फ चुनावी नीति तक सीमित न हो। यह जब विकास का स्रोत बनेगा तो दलितों का भी विकास होगा, चेतना आएगी, नहीं तो शोषण का एक नया आयाम बनेगा ऐसा लगता है।

अत: स्पष्ट है कि दलितों का जीवन शोषण एवं समस्याओं की गाथा है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि कई रूपों में समस्याएँ दिखाई देती है। आजादी के पश्चात दलित जीवन में काफी परिवर्तन हुआ है , तथा सामाजिक समस्या में भी परिवर्तन हुआ है, ऐसा लगता है। हिंदी के उपन्यासकारों ने उसपर सोचा है।

3) अंध:विश्वास की समस्या :-

आँचलिक उपन्यासों में स्थित जनजातियाँ अज्ञानी, भोली-भाली, धार्मिक प्रवृत्ति की होने के कारण समाजमान्य परंपरागत नीति का, धार्मिक मान्यताओं का और सांस्कृतिक परंपराओं का रक्षण करती आ रही है। परिणाम स्वरूप उनमें श्रध्दा-अंध:श्रध्दा की समस्या का निर्माण होता जा रहा है। अंध:श्रध्दा के साथ शकुन अपशकुन पर भी उनकी आस्था है। इन जनजातियों की सांस्कृतिक तथा धार्मिक धरोहरपर अनेक-सी अंध:श्रध्दाएँ अपना बेड़ा स्थिर कर चुकी है और ये लोग जी-जान से इनका पालन भी करते हुए लक्षित होते है। आदिम जनजातियों तथा पिछड़े दलित-पददलितों में भी ये अंध:श्रध्दाएँ देखने को मिलती है। बीसवीं सदी के अंतिम चरण में ये अंध:श्रध्दाएँ कम नहीं हो पायी। आँचलिक उपन्यासों में इसके विशेष दर्शन होते है।

संतान प्राप्ति के लिए, बीमारी मिटाने के लिए, अच्छी फसल की पैदास के लिए अनेक सी अंध:श्रध्दाएँ इन लोगों में देखने को मिलती है। पंडित नेहरूजी का कथन है - ''अधिकांश सामाजिक समस्याओं के मूल में अंध:विश्वास रूढ़ियों का आँखे मूँदकर पालन करना ही है।''[4]

'मोंगरा' (1970) में छत्तीसगढ़ अंचल की पृष्ठभूमिपर रइपुरा गाँव की अंधश्रध्दाओं का चित्रण देखने को मिलता है। छिंक का आना वे अशुभ मानते है। "मंगलू के रामधन से पच्चीस रूपए लेकर निकलते ही रामधन को छिंक आती है उसपर ये रूपये वापस नहीं मिलेंगे ऐसा रामधन सोचता है।"[5] यहाँ पर छिंक का आना अशुभ माना गया है।

इस अंचल में किसी भी बीमारीपर बड़ी माता आई है ऐसा मानना, घर के लोगोंद्वारा सिर पर तेल न लगाना, कपड़ा साफ न करना, चुल्हेपर कड़ाई न रखना, सभी मिलकर माताजी का जयगान करना आदि बातें करते हैं। बुखार के कारण जब समारू की हालत खराब हो जाती है, तब केतकी मंगलू को कहती है - "मेरे बच्चे की हालत खराब हो गई है। तुम जाओ और माता का जस गाने के लिए पड़ोसियों को बुला लो।"[6]

'मोंगरा' उपन्यास में लोग "आँख का फड़कना" अपने परिवार पर आनेवाले संकट की निशानी मानते है। "फिरन्ता का काफी रात बीतनेपर भी घर न लौटनेपर मोंगरा का दिल धड़कने लगता है। उसे लगता है कि सरकारने अपने दुश्मन फिरन्ता को आज पकड लिया होगा क्योंकि उसकी आँखे सबेरे से ही फड़क रही थी।"[7] मोंगरा अपनी आँखों का फडकना आनेवाले संकट की सूचना मानती है।

'खारे जल का गाँव' उपन्यास में डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्लजी ने (1972) में भी इसपर सोचा है। इस गाँव में घी की मटकी का गिरना शादी के लिए अपशकुन माना जाता है। चसिया के विवाह की तैयारी के दौरान उसकी मौसी के हाथों घी की मटकी गिर गई और बड़ी गनिमत हो गई इसपर तिवारी कहता है - "ई शादी न होगी।" यहाँ अंध:विश्वास के दर्शन होते है।

इस उपन्यास में बरखा न बरसनेपर वरूण को प्रसन्न करने के लिए कई प्रचलित अंध:विश्वासों का पालन किया जाता है। "मंदिर में भजन-कीर्तन का आयोजन करना, शंकर की मूर्ति को पानी में डूबो देना, देवी के मंदिर में सहस्त्रनाम जप करना, देवी के आश्रम में हवन यज्ञ करना।"[8] यें सब बाते अंध:विश्वास की प्रतीक हैं।

छत्तीसगढ़ अंचलपर आधारीत नरेंद्रदेव वर्मा की 'सुबह की तलाश' (1972) में भी अंध:श्रध्दाओं का चित्रण मिलता है। यहाँ तालाब को लेकर अंध:श्रध्दा बनी है। साथ ही मनोकामना पूर्ति को लेकर कईं अंध:विश्वास स्थिर हो चुके है। भगवान की उपासना से मनोकामना पूरी होती है। संतान की प्राप्ती होती है। सरोना गाँव के महादेव के मंदिर में जाकर जल चढ़ानेपर, सावन सोमवार के उपवास करनेपर मनोकामना पूरी होती है। उपन्यासकार लिखता है - ''सुहद्रा ठकुराइन ने सात साल तक निर्जला सावन सोमवार का व्रत किया। महादेव ने पुत्र प्राप्ति की मनोकामना पूरी की।''[9]

अपने संकटों से मुक्ति पाने के लिए भगवान की प्रार्थना करना, नारीयल चढ़ाना, मनौती मनाना आदि बातें अंधविश्वास की निशानी हैं। प्रस्तुत उपन्यास में घायल सोमेश्वर चार दिनों के बाद होश में आने पर पुरखिन कहती है, ''लाल ठीक हो जाए तो वह लक्ष्मी नारायण को नारीयल चढायेगी।''

पुत्र प्राप्ती के लिए उनकी यह श्रध्दा है कि, महानदी और अन्य नदियाँ जहाँ मिलती है वहाँ एक मंदिर हैं। जब कोई गर्भवती स्त्री वहाँ आती है तो उसे पुत्रप्राप्ती होती हैं। ''वल्लभाचार्य के माता-पिता यहाँ आए थे। इसी स्थल के कारण वल्लभाचार्य का जनम हुआ।''[10]

'जंगल के आसपास' राकेश वत्सजी के (1980) में एक दस्तूर के बारे में अंधविश्वास हैं। जंगल में किसी भी दस्तूर को कोई नहीं तोड़ सकता। दस्तूर टूँटता हैं तो समझ लिया जाता है कि, जल्दी ही कोई घोर संकट आनेवाला हैं। ''देवी-देवताओं को नाखूष करने का नतिजा संकट ही होता हैं, और संकट बुलानेवाले आदमी के लिए कठोर से कठोर दंड का विधान हैं।''[11] कई बार दण्ड की यातना न सह पाने की वजह से दण्ड पानेवाला मर भी जाता हैं। अंग-भंग हो जाना तो लगभग निश्चित ही होता हैं।

'जंगल के आसपास' उपन्यास में प्रस्तुत बरसाती नाले की बेढ़ब, डरावनी चट्टानों और घने जंगल की हरहराट के बीच भी लाश को ढूँढने निकले, जूता हीन लोग अपने आपकों

किसी भी प्रकार के डर से मुक्त और सुरक्षित अनुभव करते हैं , क्योंकि वे ओझा के साथ होते हैं। उन्हें विश्वास हैं कि - ''मंत्रों की असीम शक्ती ओझा की मुठ्ठी में है और उस शक्ति के जरीये ओझा कुछ भी कर सकता हैं।''[12] उस के बहुत से चमत्कार उन लोगों ने अपनी आँखों से देखे हैं। यहाँ ओझा को सर्व शक्तिमान मानने की परंपरा एवं अंधश्रध्दा रही हैं, ऐसा लगता हैं।

अंध:विश्वास के रूप में अग्नि परीक्षा लेना भी एक प्रथा रही है। अपनी पवित्रता स्पष्ट करने के लिए अग्नि परीक्षा ली जाती है। इसके लिए वे सीता की कहानी का आधार लेते है। अत: अंध:श्रध्दा का ही यह एक अमानवीय रूप ही है। इन लोगों का मानना है कि - ''अग्निपरीक्षा एक धार्मिक काम है। रामायण काल से ही हमारे देश में वह चला आ रहा है। माँ सीता को भी तो अग्नि-परीक्षा देनी पडी थी। अगर परीक्षा देती हुई कोई औरत जल जाती है तो यह देवता की मर्जी से होता है, इसमें हम या आप क्या कर सकते हैं?''[13]

अत: स्पष्ट है कि आज इक्कीसवी सदी में ये लोग यहीं सोच रहे हैं, जिनमें उनका अज्ञान, अशिक्षा, नये वैज्ञानिक विचारों का अभाव स्पष्ट होता है। उनके अज्ञान, अशिक्षा, धार्मिक रूढ़ी, परंपरा, देवताओं के प्रति निष्ठा आदि के कारण उनमें विभिन्न अंध:विश्वासों का निर्माण हो रहा है। पुत्रप्राप्ति, बिमारी, मनोकामना पूर्ति, बरसात आदि के लिए जो भी उनमें अंध:श्रध्दाएँ है वे सभी मानसिकता को व्यक्त करती है।

4) शकुन-अपशकुन की समस्या :-

आँचलिक उपन्यासों में चित्रित जनजातियाँ अंध:विश्वासी होने के कारण शकुन-अपशकुन पर विश्वास रखती है। देवी-देवता, शकुन-अपशकुन, भूत-प्रेत, चुडैल-डायन तथा झाड-फूँक आदि का अपने जीवन में घटनेवाली घटनाओं का भविष्यत के साथ वे अपना संदर्भ जोड़ देते है। वैज्ञानिक प्रगति और आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव से दूर अंचल विशेष के मनुष्य का जीवन भ्रम, भय एवं अज्ञान से संचलित हो रहा है। अज्ञानी, अनपढ़ ग्रामवासियों का भूत-प्रेत, चुडैल-डायन पर अटूट विश्वास रहता है, जिसकी आलोच्य उपन्यासों में सशक्त

अभिव्यक्ति हुई है। वे लोग साधारण से साधारण बीमारी का संबंध भूत-प्रेत से जोड़ते है। असामयिक मृत्यु, अतृप्त आत्मा भूत-योनी में चली जाती है, ऐसी उनकी धारणा है। भूत-प्रेत के साथ-साथ झाड-फूँक के प्रति अंध:श्रध्दा के दर्शन होते है।

'मोंगरा' शिवशंकर शुक्ल लिखित उपन्यास में चमार जनजाति का चित्रण किया है। इसमें मोंगरा गाँववालों की बातें सुनकर फिरंता का दु:ख भूल जाती है और मंगलू के घर की ओर बढ़ती है। तभी रास्ते में शीलता के मंदिर में जाकर 'महतारी' को प्रणाम करते हुए कहती है - "हे महतारी, तुम्हारा बहुत सत है, तुम्हारी ही कृपा से मेरे भइया का सारा दु:ख दूर हो रहा है।"[14] मोंगरा महतारी से कहती है कि तुम्हें सब लोगों की चिंता लगी रहती है। उनका यह कथन अंधविश्वास का ही प्रमाण है।

विंध्याचल पर आधारीत डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल के 'खारे जल का गाँव' में "चसिया के विवाह के अवसरपर घी की मटकी का गिरना अपशकुन मानकर चसिया की शादी को रोका गया।"[15] ये लोग अज्ञानी, अशिक्षित, नये वैज्ञानिक विचारों से दूर धर्म, जाती, देवी-देवता के गहरे प्रभाव से युक्त, भगत पंडित-मंत्रिकों के दबाव में दबे हुए होने के कारण अपशकुनपर गहरा विश्वास रखते है यह यहाँ स्पष्ट हुआ है।

नरेंद्रदेव वर्मा के 'सुबह की तलाश' में छत्तीसगढ़ अंचल में स्थित भूत-पिशाच्च की बाधापर कभी घटनाएँ देखने को मिलती है। "रात के समय रास्ते में डायन, राक्षसी, प्रेतनी घुमती है, बिड़ी जलाने के बाद रास्ता छोड़ देती है। जब मनुष्य उससे डरता है, तब वह उसे खा लेती है।"[16] ऐसी इन लोगों की धारणा है। अमोलीडीह रास्ते के मोडपर एक खंडहरनुमा भूलहा मकान का होना, रात में वहाँ से दर्दनाक चीख का सुनाई देना, इस चीख को मौत की चीख मानना। इसीकारण यहाँ दुर्घटनाओं का घटना, किसी नवविवाहिता का डोली से उतरकर बेतहाशा भागने का दृश्य देखना, "वह पहिए के नीचे आ रही है - जोरों की चीख --- दबकर मरने के पहले जैसी आवाज, शरीर के रंध्रों को फोड़कर, बाहर निकलती है, ठीक वैसी ही

चीख़।''[17] ऐसा ड्रायव्हर को लगता है वह जोर से ब्रेक दबाता है, गाडी का पेड से टकराना, किसी का भी न बचना यह सब भूत-पिशाच्य की लोककथाएँ आज भी इस इलाके में प्रचलित है। यहीं अनुभूति सोमेश्वर प्रसाद सिंह को होती है। उसे अपनी गाड़ी के सामने चीख सुनाई देती है। इस समयपर ड्रायव्हर कहता है, ''कुछ नहीं, सर, एक सियार बीच में आ गया था।''[18] ऐसी अनेक किवदंतियाँ इस अंचल से जुड़ी हुई होती है।

राकेश वत्स के 'जंगल के आसपास' में भूत-प्रेत के साथ-साथ झाड़-फूँक के प्रति अंध:श्रध्दा के दर्शन होते है। ओझा खून की एक बूंद न गिराए लोहे का काफी मोटा सुआ अपनी जीभ के आर-पार निकाल लेता है। भूत बाधा से ग्रसित मर्द और औरतों को पीट-पीटकर उनके अंदर के प्रेत चुड़ैल डाकिनी या ड़ायन को प्रत्यक्ष रूप में बुलवा देता है और शरीर छोड़कर भाग जाने के लिए मजबूर कर देता है। ''बड़े से बड़े रोग को बिना किसी औषधी के ही केवल झाड-फूँक के सहारे दूर कर देता है।''[19]

जंगल में बच्ची की लाश ढूँढने के बाद जब भीड के हाथ कुछ नहीं लगा, तो ओझा ने झाड़न से एक पंख निकालकर बाकर की दायी कलाईपर बाँध दिया। इसका मतलब बच्ची का पिता अपने धर्म और कर्तव्य से मुक्त हुआ। जिसका सबूत धर्म के देवता ने उसकी कलाई पर दे दिया है।

''जूतेवाले महाजनों से लोग बहुत डरते है। शायद भूत-प्रेतों, डायनों, चुडैलों से भी कईं ज्यादा।''[20] क्योंकि डायनें-चुडैले किसी खूँखार जंगली जानवर का रूप धारण कर बस एक झटके में जान ले लेता है पर ये महाजन रेत-रेतकर मारते है। ऐसी उनकी धारणा है।

धर्म, ईश्वर, भूत-पिशाच्च आदि के बारे में ये अंध:विश्वास इन लोगों में निवास कर रहें है। आज शिक्षित स्वयंसेवक लोग, विविध संस्था इन लोगों में स्थित इन अंध:विश्वासों को हटाने का काम कर रहे है। आँचलिक उपन्यासों में बांझपन को हटाना, बीमारी को मिटाना, अच्छी फसल की पैदास करना, आँखे फड़कना, छिंक आना, शरीर गोंदना, बलि चढ़ाना,

वस्तुओं का हाथ से गिरना, बरखा बरसने के लिए आराधना करना, संकट से मुक्ति पाने के लिए प्रार्थना करना, पापमुक्ति के लिए देवी देवताओं की यात्रा करना, प्रकोप शांति के लिए मांस भक्षण न करना, अतृप्त असंतुष्ट मृतक आत्मा का भूत-पिशाच्च से मुक्ति पाना, अरुआ का मुँह देखने पर अपशकुन मानना आदि के बारे में अंध:विश्वास देखने को मिलते है।

प्रस्तुत उपन्यासों के युवक भी इन परंपराओं के शिकार बने हुए दिखाई देते है। अंध:विश्वास निर्मूलन समिती, विज्ञान जत्था आदि सेवाभावी संस्थाओंद्वारा इस अंचल में स्थित अंध:विश्वासों को दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है। 'सुबह की तलाश' का सुग्रीव, अरविंद, 'जंगल के आसपास' की श्यामा, उनकी माँ, अध्यापक दिनेश आदि कई ऐसे प्रतिकात्मक पात्र है। शकुन-अपशकुन का विरोध करके नईं चेतना जगाने का कार्य कर रहे है। आज इसका प्रभाव धीरे-धीरे कम हो रहा है ऐसा लगता है।

5) शोषण की समस्या :-

दलित जनजातियों का शोषण उनकी आर्थिक दुर्बलता, अज्ञान, अशिक्षा के कारण जमींदार, ठाकुर, साहुकार, महाजनोंद्वारा किया जाता है। ये लोग आजिविका के लिए जमींदार तथा महाजनों से कर्ज लेते हैं परंतु जमींदारों और महाजनों की कुशल शोषण की नीति के कारण ये बेचारे आजीवन सूद ही चुकाते रहते हैं। कर्ज को आदा करने के लिए उनकी खेती और मकान का निलाम किया जाता हैं।

शिवशंकर शुक्लजी के 'मोंगरा' (1970) उपन्यास में इसपर प्रकाश डाला है। मंगलू का 'ददा' रामधन के 'ददा' से कर्ज लेता है। कर्ज-ब्याज अदा न होनेपर रामधन उसे मकान गिरवी रखने की सलाह देता है। अंत में मकान का निलाम होता है। रामधन रायपुर से वकील से बैनामा लिखकर लाता है। मंगलू चुपचाप दस्तखत करता है।

इन लोगों का शोषण हर प्रकार से जमींदार करते है, उन्हें हरतरह के आमिश दिखाकर फँसाते है। रामधन ने मंगलू को आश्वासन दिया था कि वह मोंगरा के विवाह के लिए

मदद करेगा परंतु जब मंगलू विवाह के लिए पैसे माँगता है तब रामधन कहता है, ''ब्याज भी बढ़ रहा है। तुम्हारा मकान तो मेरे पास गिरवी है। इतने पर मैं तुम्हें और रूपया नहीं दे सकता।''[21] बाद में सूद बढ़ता है। मंगलू के बेटी की मृत्यु भी होती है। रामधन इसपर भी दयालू नहीं होता, पैसा वसुल करने के लिए कचहरी तक जाता है। रामधन कहता है - ''बिना कचहरी पैसा नहीं मिलेगा।''[22]

जमींदार किसानों, दलितों का शोषण करते है, उन्हें हमेशा पीड़ा पहुँचाते हैं। उनकी प्रगति से जमींदार जलते रहते है। ''मंगलू को कृषिरत्न की उपाधि और दस हजार रूपयों का इनाम मिलनेपर रामधनने मंगलू की 'बखरी' को आग लगा दी।''[23] इस प्रकार किसानों को बरबाद करने की कोशिश ठाकुर, जमींदार हमेशा करते है।

डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल के 'खारे जल का गाँव' (1972) में इस इलाके के लोग अज्ञानी और भोलेभाले होने के कारण पुलिस शोषण की चक्की में पीसे जाते है। अन्याय और अत्याचार के खिलाफ कोई आवाज नहीं उठाता परंतु समाज परिवर्तन की हवा ने इस इलाके में भी चेतना जागृति का काम किया है। इसलिए बढ़ते हुए जमींदार, ठाकुर तथा पुलिस शोषण के खिलाफ बातें करने का अब इन लोगों में साहस आ गया है। ये लोग प्रजातंत्र का महत्व समझने लगे है। इस उपन्यास का एक पात्र सुग्रीव इसका अच्छा उदाहरण है। वह कहता है - ''जमादार साहब, प्रजातंत्र है प्रजातंत्र। आप इस तरह जनता का अपमान नहीं कर सकते।''[24]

ग्रामवासी ठाकुरोंद्वारा किए जानेवाले अन्याय, अत्याचार को बर्दाश्त करना नहीं चाहते। इस अन्याय के खिलाफ वे संघर्ष करने के लिए संगठन करते हैं। अब उन्हें न्याय अन्याय का ज्ञान हो रहा है। 'खारे जल का गाँव' का अरविंद और मुंशीजी इसी प्रकार के पात्र है। रामधनिया बनिया ठाकुर करनसिंह महेश्वरीद्वारा सुग्रीव और नरदूना की पीटाई की जानेपर इसके खिलाफ आवाज उठाते हुए मुंशीजी कहते है, ''अनिवाय केर विरोध होना चाही। हम तोंहरेन साथ इन। अइसन है कि सब ठीक होइ जाई।''[25] ठाकुर के बढते हुए अन्याय का

मुकाबला करने के लिए अरविंद संगठन शक्ति का गठन करता है। वह गरीब, मजदूर , किसानों का संगठन करते हुए कहता है - ''हम क्या नहीं कर सकते संगठन बनाकर, इन सबका प्रतिरोध कर सकते है, जनता को जगा सकते है।''[26] यहाँ पर पिछड़े इलाके में अरविंद जैसे युवक किसानों मजदूरों में चेतना प्रवृत्ति का निर्माण करना चाहते हैं ।

ये लोग ठाकुर जमींदारों से पीसते जा रहे है। इनके खिलाफ कोई बोल भी नहीं सकता था। इनका चित्रण यहाँ मिलता है। ''सुग्रीव और नरदूना को ठाकुर करनसिंह के द्वारा पीटना, चतुरी का रातोरात 'मर्डर' कर देना। किसी ने 'चूं' तक न करना।''[27] आदि घटनाएँ शोषण नीति को स्पष्ट करती है। यहाँ के ठाकुर, जमींदार औरतोंपर कोडे लगाते है। इसीसे संत्रस्त होकर इन स्त्रियों ने फाँसी के फंदेपर खुद को लटकाकर आत्महत्या कर दी। जमींदार, ब्राह्मणोंद्वारा उनकी आज्ञा का उल्लंघन होने पर उन्हें भी पीटते थे। ''हल जुतवाने के लिए जब ब्राह्मण इन्कार करता है, तब उसकी मरम्मत की जाती।''[28] यहाँ स्पष्ट है, जमींदारों की कुनिति का प्रभाव सिर्फ दलितों पर हीं नही रहा बल्कि ब्राह्मण भी शिकार हुए। ग्रामजीवन का हर एक व्यक्ति जमींदारों के षड़यंत्र में अटका हुआ था।

महुआ लेने आयी चनकी, मटिया, पुनिया की भी जमींदारों द्वारा पीटाई करना, उनके खिलाफ चोरी की रपट लिख देना, पुलिस को तीन सौ रूपयों की रिश्वत देकर उन्हें हथकडियाँ पहनाते हैं। यें जमींदार अपने धन और शक्ति के बलपर पुलिसवालों को खरीदकर लोगों का शोषण करते है। उनके यहाँ काम करने आयी हुई स्त्रियों की अस्मत लूटते है। ऐसी स्त्रियाँ स्वसंरक्षण के लिए चिल्लाती तो उनपर चोरी के इल्जाम थोंप देते है। किस्सूसिंह इसका अच्छा उदाहरण है। अपनी खेती में काम करनेवाली चनकी को अकेली पाकर वह उसकी इज्जत लूटना चाहता है। उसकी चिल्लाहटपर किस्सूसिंह कहता है, ''सारा अनाज गिराय दिया। आंधर हो क्या ? कउन नुकसान देगा।''[29] यह कथन शोषण का प्रतिक है।

किसी से चुनाव में हारनेपर भी ये जमींदार इन लोगों का शोषण पूरी तरह से करते है। ''चुनाव में अरविंद का विजयी होना, जमींदार की हार होना, अरविंद के विजयी जुलूसपर जमींदारद्वारा लाठीयाँ बरसना, सिर फूटने-से अरविंद का बेहोश हो जाना।''[30] आदि घटनाएँ हार से उत्पन्न ईर्षा और ईर्षा से उत्पन्न विकृति की निर्देशक है।

नरेंद्रदेव वर्माजी के 'सुबह की तलाश' (1972) में भी जमींदारो द्वारा होनेवाला शोषण चित्रित किया है। लोगों की जमीन हड़प करने की जमींदारों की नीति पर सोचा गया हैं। इस हड़प नीति का उदाहरण जमींदार रणधीर हैं। जो काले आदमी की बेरहमी के साथ पीटाई करता हैं। वह दया की भीख माँगता हैं। सोमेश्वर कहता है - ''आदमीपर आप जो यह अत्याचार कर रहें हैं, वह तो पशुओं पर भी नहीं किया जाता।''[31] दूसरों की जमीन पर हक जमाना, स्कूल के पास की फगुवा पंडित की जमीन हड़प करना, उसी जमीन को सोमेश्वर मास्टर द्वारा लड़कों की सहायता से उपजाऊ बनाना, ये बाते ठाकुरों को अच्छीं नहीं लगती, तब ठाकुर कहता हैं, ''वह तो सारे गांव की चरागाह जमीन हैं, उसे कौन घेर सकता हैं।''[32] यहाँ स्पष्ट शोषण के कारण ग्राम विकास में अडसर उत्पन्न हो रहा है।

साग सब्जीवाली उर्वर भूमी को ठाकुर हड़प करना चाहता है। इन ठाकुरों की मान-सम्मान की आदतें बढ़िया होती हैं। इन्हें कोई ठाकुर कहे तो ये बौखला उठते हैं। ये खुद को सरकार मानते हैं। ठाकुर कहता है, ''अरे मरार के बच्चे सरकार नहीं कह सकता। तमीज से बाते करना नहीं जानता।''[33] पुलिसों को हथिया बनाकर दलितों पर अमानवीय अत्याचार करना, उनकी पीटाई करना आदि के साथ उनका शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, नैतिक शोषण जमींदार करते हैं।

जमींदारों की वासना का शिकार कई युवतियाँ बनी हैं। गोंदा और छोटे ठाकुर में संबंध प्रस्थापित होना, गोंदा की गोद में अंकुर पनपना, छोटे ठाकुर के कहने पर इस मामले में सोमेश्वर को बदनाम करने का षड्यंत्र रचना और अंत में गोंदा की तालाब में डूबकर आत्महत्या

का प्रयास करना, आदि घटनाएँ यहाँ के जमींदारों की वासना की शिकार बनीं युवतियों की व्यथा को चित्रित करती हैं। यहाँ स्पष्ट है, जमींदार कुकर्म करते हैं और उसका इल्जाम दलित सोमेश्वर पर थोंपना चाहते हैं। दलित नारी की अस्मत लूटने में वे अपने आपको माहिर मानते हैं। परिणामत: ऐसी नारियाँ खुदकुशी करती है। उपन्यासकारों ने उसपर अपना कड़ा रूख प्रकट किया हैं।

राकेश वत्स के 'जंगल के आसपास' (1980) में ग्रामवासियों के शोषण को स्पष्ट किया हैं। जमींदार, पुलिस, अफसर, दरोगा, ओझा, धार्मिक व्यक्ति आदि द्वारा ग्रामवासी युवक, युवती, स्त्री-पुरूष का होनेवाला शोषण प्रभावी ढंग से चित्रित किया हैं। यहाँ स्पष्ट किया है, शोषण के मूल में अज्ञान सत्ता का हावी रहता हैं। अज्ञानी ग्रामवासी का धन, धर्म के बल पर शोषण किया जाता है। यहाँ नारी की अग्नि-परीक्षा लेना इसका प्रमाण हैं। इसपर ओझा कहता है, ''अग्नि परीक्षा एक धार्मिक काम हैं। रामायण काल से ही हमारे देश में वह चला आ रहा हैं।''[34] यहाँ स्पष्ट है कि सीता माँ ने भी अग्नि परीक्षा दी थी। अगर परीक्षा देती हुई कोई औरत जल जाती है, तो यह देवता की मर्जी से होता है। ऐसा यहाँ के लोगों का मानना हैं। औरत को कितना हीन दर्जा दिया जाता हैं। यह इस बात से स्पष्ट होता हैं।

राकेश वत्सजी ने अपने इस उपन्यास के माध्यम से उन तमाम शोषितों की कथा-व्यथा को स्पष्ट किया हैं। जिन्हें यह समाज जीने के काबिल भी नहीं छोड़ता। यहाँ के मर्द लोग औरतों पर किस तरह जुल्म करते है, यह यहाँ स्पष्ट हो जाता हैं। ओझा के माध्यम से गांव के लोगों ने उसे एक मुखिया के रूप में स्वीकार किया हैं ऐसा प्रतित होता है। इसलिए सारा गांव उसकी हाँ में हाँ मिलाता हैं। जाने अनजाने उसका गुलाम बन जाता हैं।

यह स्पष्ट होता है कि, आँचलिक उपन्यासों में तत्कालीन समाज व्यवस्था, जमींदारों द्वारा शोषण की व्यथा-कथा, उनके अमानवीय अत्याचारों के यथार्थ दर्शन होते हैं। लोगों की जमीनें हड़प करना, सूद के बदले में उनसे वेठबिगारी लेना, लोगों एवं दलितों की गिरवी रखी

हुई वस्तुओं का निलाम करना, औरतों की अस्मत लूटना, झोपडियों को आग लगाना, झूठे इल्जाम लगाकर जेल भेजना, उनकी पीटाई करना, उनका कत्ल करना, उनकी फसल को नष्ट करना, उनपर हमेशा दबाव रखना आदि विविध आयामों के माध्यम से गरीब किसानों एवं दलितों का शोषण जमींदारों, ठाकुरों द्वारा किया जाता हैं। किसानों के अज्ञान और अशिक्षा का फायदा उठाकर ही यह शोषण चक्र निरंतर जारी रखा जाता हैं। आज धीरे-धीरे इस शोषण का विरोध भी हो रहा हैं। शैक्षिक प्रगति और प्रगतिवादी विचारधारा ने इन लोगों में विद्रोह की भावना का निर्माण किया हैं। क्रांतिकारी मोर्चा का गठन करना, नारियों का संगठन बनाना, चुनाव में दलितों का शामिल होना, आदि घटनाओं का चित्रण 'मोंगरा', 'खारे जल का गाँव', 'सुबह की तलाश', 'जंगल के आसपास' आदि उपन्यासों में हुआ हैं। ये उपन्यास परिवर्तित ग्रामजीवन पर प्रकाश डालते हैं। यह यहाँ आँचलिक उपन्यासों के माध्यम से स्पष्ट होता हैं।

6) जनआंदोलन की समस्या :-

हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में ग्रामजीवन एवं दलितों पर जमींदार, पुलिस, ठाकुर आदि के अत्याचारों का चित्रण हुआ हैं उनका शोषण भी होता जा रहा हैं। परंतु इस शोषण के खिलाफ इन लोगों में जनजागृती होती जा रही हैं। इस शोषण के खिलाफ जनआंदोलन खड़े करके शोषण से वे मुक्ति पाना चाहते हैं।

शिवशंकर शुक्ल लिखित 'मोंगरा' (1970) में रइपुरा गांव के मंगलू को लोग जात से बाहर निकालने का फैसला करते हैं क्योंकि रइपुरा गांव में पंचों के सामने रामधन कहता हैं कि, ''मंगलू ने नागर चलाया हैं। इसलिए उसे जात से बाहर कर देना चाहिए। ब्राह्मण के घर में पैदा होकर नागर चलाना पाप हैं।''[35] मंगलू पंचायत की बातें सूनकर चिल्लाता हैं, ''अरे रामधन तू मुझे कितनी बार जात से बाहर निकालेगा ? मैं तो तुम्हारे जात में मिलने की इच्छा भी नहीं रखता।''[36] यह कथन जात-पंचायत के प्रति विद्रोह की निशानी हैं। इसके बाद पंचायत बिना किसी फैसले के उठ जाती हैं।

डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्लजी के 'खारे जल का गाँव' (1972) में बेवहारी, देवगांव (विंध्याचल) में जातिभेद के खिलाफ एक लहर उठी हैं। इस उपन्यास का पात्र सुग्रीव भेदाभेद के खिलाफ जनजीवन में जागृती करने का प्रयत्न करता हैं। गांव में दलितों के लिए मंदिर प्रवेश निषिध्द था। इसका विरोध करते हुए सुग्रीव कहता हैं, ''ई बडकवा-छोटकवाँ यहाँ नहीं चलेगा। ई भगवान का दरबार है।''[37] यहाँ स्पष्ट हैं , मंदिर को भगवान का दरबार मानकर जातीयता को ठुकराने की प्रवृत्ति अब पनप रही हैं ऐसा लगता हैं। यह घटना से नासीक के कालाराम मंदिर प्रवेश की याद आती हैं।

इस उपन्यास की नारियाँ भी नई चेतना और विचारों से प्रभावित होकर अपने घर के अंदर होनेवाले अन्याय के खिलाफ भी आवाज उठाती हैं। यहाँ चनकी इसका उदाहरण हैं। वह अपने पती छिद्दन ने लगाई हुई झापड़ का प्रति उत्तर देते हुए कहती है, तूं गुलामी कर अपने मालिक केर हम न करव हम माइके जाय रहेइन।''[38] यह कथन चेतित नारी का प्रमाण है।

ग्राम अंचलों में जाति-पंचायत न्यायदान का कार्य करती हैं। जाति-पंचायत का न्याय सभी गांववालों को मानना पड़ता हैं परन्तु आज इस न्यायव्यवस्था का थोथापन इन लोगों के सामने आ रहा हैं और इसका विरोध भी किया जा रहा हैं। यहाँ का एक पात्र नरदूना नाऊ जाति-पंचायत का विरोध करते हुए कहता है, ''सगरी पंचायत थोथी है, लबार है। जब उस बार हम लडे, कोउ पंच कुछ न बोलीना।''[39] न्यायव्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करके इसके खिलाफ संघर्ष करने की, आवाज उठाने की चेतना इन लोगों में जागृत होती जा रही हैं।

अरविंद क्रांतीकारी मोर्चा बनाकर चेतना जागृती का कार्य करता हैं। हर जोर जुल्म के साथ टक्कर लेता है। भ्रष्टाचार का विरोध करता है। संगठन के आधारपर पंचायत और विधानसभा के चुनाव लड़ता है। क्रांतिकारी मोर्चे की मांगे प्रगतिवादी है जैसे, ''मजदूरों की कम-से-कम मजदूरी ढ़ाई रूपया हो। पीने के पानी की अविलम्ब व्यवस्था हो, गाँव में एक कॉलेज और प्राइमरी हेल्थ-सेन्टर खोला जाय आदि। अपनी माँग के लिए मजदूरों ने हड़ताल भी

की।''[40] अरविंद के द्वारा गाँव में ''सरकारी उपभोक्ता भांडार को खोलना, अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधि बशीर मोहम्मद को उसका सचिव बनाना, चमार जाति के ददई से इसका उद्‌घाटन कराना आदि बातें प्रगतिवादी विचारों का प्रतीक है।''[41] निम्न जातिवालों को भी संस्था में प्रतिनिधित्व देना, प्रमुख अतिथी के रूप में उन्हें आमंत्रित करना आदि घटनाएँ प्रगतिशील चेतना की निर्देशक है।

राकेश वत्स के 'जंगल के आसपास' (1980) उपन्यास में हम इनका नामोनिशान मिटा सकते है ! इस कथन के साथ शामा का लहरा हुआ हाथ हवा में लहरा उठा हैं और वे संगठन शक्ती से जानवरों से ही नहीं दूसरी किस्म की खतरनाक आफतों से भी अपनी हिफाजत कर सकती हैं। यहाँ संगठन, नारी संगठन, जन संगठन करने की कोशिश श्यामा करती हैं। जंगली जनजीवन में चित्रित समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए दिनेश कहता है, ''वेश्यावृत्ती और छुआछूत जैसी खतरनाक बिमारीयाँ समाज के एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग पर किए जा रहे अन्याय और पाश्विक अत्याचारों का ही नतीजा हैं। चेतनाहीन इंसान को जानवरी जिन्दगी जीने के लिए मजबूर किए जाने की भद्‌दी मिसालें हैं।''[42] उसके मतानुसार लोग भी इन सबकी पैरवी करेंगे तो समाज का उध्दार नहीं होगा। आदिम युग की मायावी विचित्रताओं के गहरे गर्त से इंसान बाहर कैसे निकलेगा ? यही अहम सवाल उठाया है।

आँचलिक उपन्यासों में चित्रित जनआंदोलन की समस्या को देखने के बाद यह स्पष्ट होता है कि, अंचल के लोगों पर पुलिस, ठाकुर, जमींदार आदि के द्वारा अन्याय और अत्याचार बढ़ते जा रहे हैं। इन आँचलिक उपन्यासों के पात्र मुर्दा नहीं बल्कि इनमें अन्याय और अत्याचार के खिलाफ लड़ने की शक्ति रखते हैं। वे मजदूर किसान अपनी संगठन शक्ति को बढ़ाकर अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के लिए जनआंदोलन का निर्माण करते हैं। वहाँ के लोगों में प्राण फूँककर उनमें चेतना प्रवृत्ति का निर्माण करते हैं।

आंचलिक उपन्यासों में कई सरकारी अफसर और कई स्कूल मास्टर अपनी सेवाएँ प्रदान करने के लिए नियुक्त किए गए हैं। कई सेवाभावी स्वयंसेवक समाजकार्य की भावना से वहाँ तैनात हुए हैं। वे सभी इन लोगों का प्रबोधन करके उनमें चेतना प्रवृत्ति, जागृती का कार्य कर रहे हैं। जो वहाँ के लोगों को कानून के अधिकार से सतर्क बनाते रहे हैं। इन लोगों में चेतना जागृती कर रहे हैं।

'सुबह की तलाश' का सोमेश्वर, अरविंद, सुग्रीव, 'जंगल के आसपास' का दिनेश, शामा आदि पात्र इस कोटी के हैं। डॉ. आशा मेहता के मतानुसार "इस जन आंदोलन के पीछे स्वतंत्रता, समानता, एकता, त्याग की भावना रही हैं।"[43] यह कथन यहाँ यथार्थ लगता हैं।

इन उपन्यासों के पात्र नाममात्र नहीं हैं। वे इस अंचल का प्रतिनिधित्व करते है और उपन्यासकारों के विचारों के वाहक लगते हैं। इस जनआंदोलन की समस्या में समाज प्रबोधन तथा प्रगतिवादी भावधारा के दर्शन देखने को मिलते हैं।

7) नारी शोषण की समस्या :-

भारतीय संस्कृति में नारी का महत्वपूर्ण स्थान हैं। फिर भी नारी का शोषण होता आ रहा हैं। चाहे वह शहरों, ग्रामों या पहाड़ी प्रदेशों के अंचलों में बसनेवाली हो, या उच्चकुलोत्पन्न हो, तथा दलित, पीड़ित हो। इस शोषण से मुक्त नहीं हैं। घर-परिवार से शोषण का दमन चक्र शुरु होता हैं। घर-बाहर के शोषण से नारी दिन-ब-दिन चूर-चूर होती जा रही हैं। इसी शोषण के खिलाफ आज नारी मुक्ति आंदोलन चलाया जा रहा हैं। नारियों में अन्याय, अत्याचार, शोषण के प्रति चेतना, जागृती उभर रही हैं। नारी चाहे ग्रामीण हो, दलित हो या अंचल की हो आज उसका पूरा माहौल अन्याय के प्रति चेतित हो उठा हैं। आँचलिक उपन्यासों में शोषण के खिलाफ आदिम जनजाति की स्त्रियों एवं दलित स्त्रियों में फैलनेवाली चेतना प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला हैं। नारी शोषण का कार्य स्पष्ट करते हुए डॉ. रेवा कुलकर्णी कहती है। "नारी की गुलामी का एक मात्र कारण है, उसकी आर्थिक परतंत्रता।"[44] आज नारी का रूप बदलता जा रहा है। वह अपने अस्तित्व, अधिकार की रक्षा कर रही है।

नारी के इस परिवर्तित रूप को समाज ने तुरंत स्विकार नहीं किया, क्योंकि समाज की यह विशेषता है कि किसी भी परिवर्तन को भले ही वह हितकारक क्यों न हो समाज तुरंत स्विकार नहीं करता।

शिवशंकर शुक्लजी के 'मोंगरा' (1970) उपन्यास की मोंगरा अपने पति फिरन्ता को देवता के समान मानती हैं, किंतु फिरन्ता के मुँह से बाँस आनेपर वह समझ जाती है कि, उसने शराब पी हैं। मोंगरा जान जाती है कि, जिसे वह देवता समझती थी वह शैतान का दूसरा रूप हैं। वह अपनी जिंदगी के बारे में सोचती है, ''वह खुद की अपनी जिंदगी की नैया को किनारे लगाएगी। वह अपने पति को कैसे समझाए।''[45] इससे उनका जिंदगी के प्रति दृष्टिकोन स्पष्ट होता है।

मोंगरा एक ऐसी नारी है, जो अपने पति को पथ पर लाती हैं। मोंगरा अपने पति को सही राह पर चलने को कहती हैं। वह उसके सामने पहला रास्ता बताती हैं कि अगर तुम्हें अपना कुकर्म नहीं छोड़ना है, तो तुम मजा लेते रहो। मैं तुम्हें टोकने नहीं आऊँगी पर तुम अगर ऐसा करोगे तो मैं नहीं, मेरी मिट्टी ही तुम्हारे हाथ आएगी। इस तरह मोंगरा अपने पति फिरन्ता को पथ पर लाने की कोशिश करती हैं। वह दूसरा रास्ता भी बता देती हैं, ईमानदारी और मिहनत का । वह कहती है ''तुम पसीना बहाकर चार पैसे कमाओ। इससे अगर हमें नून-भात भी मिला तो उसे हम बड़े प्रेम से खाएँगे। धिरज आदमी का सबसे बड़ा धर्म है।''[46] नारी का परिवार में पति द्वारा शोषण हो रहा है। यहाँ शराबी पति से पीड़ित मोंगरा अपने पति को जीवन का पथ दिखानेवाली आदर्श पत्नी लगती हैं।

डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल के 'खारे जल का गाँव' में चनकी नामक नारी की संघर्षशीलता को प्रस्तुत किया है। छिद्दन गुस्से में चनकी को एक झापड़ लगाता है। तो वह चीखकर बोलती है कि ''कउने कसाई के हांथन मां परी। न इज्ज़त-आबरू है न मान-मरजादा। कइसा कायर आदमी हइ, हे भगवान।''[47] उनकी आँखों से आँसू गिर रहे थे। किस्सूसिंह के

छिद्‌दन को भड़कानेपर वह चनकी जैसी संघर्षशील नारी पर जुल्म करता है, तो वह घर छोड़के मैके चली जाती है।

नरेंद्रदेव वर्मा के 'सुबह की तलाश' में नारी प्रतिबध्दता का परिचय मिलता है। ब्याह के उपरान्त कईं सालों तक पति का मुँह न देखना, उसके साथ न बोलना आदि प्रतिबंध नारीपर लगाए गए है। इसका उदाहरण सुभद्रा है, देखिए - ''सुभद्रा का विवाह सात साल पहले हो चुका था, लेकिन अभी तक पति को नहीं पहचानती, उसे ठीक से देख तक नहीं सकती।''[48] यहाँ पर स्पष्ट है कि नारी पर्दे में बंदिस्त रही है।

रणधीर जैसे नारी पिपासू भी इन लोगों में स्थित है, जिसके नामपर सभी औरतें थूँकती हैं। औरतों को देखते ही उसके मुँह में पानी भर आता है। ''गाँव की बहुबेटीयों के आँचल का सबसे मैला और बदनुमा धब्बा है रणधीर।''[49] जमींदारोंद्वारा पैसों की लालच में लूटी जानेवाली औरतें अंत में खुदखुशियाँ कर देती हैं। इस उपन्यास में प्रस्तुत परागा इसका अच्छा उदाहरण है। रामअधार की बहन परागा सुंदर है, ससुराल से आयी है। रास्ते में ठाकुर नाहरसिंह ने उसे 'भांठा बंगला' में उठा लिया। उसकी रक्षा भगवान भी नहीं कर सका। उसे लूट लिया, घर आती तब स्वयं जलकर मौत का स्विकार करती है। जमींदार स्त्रियों को लूटते समय अनेक हथकंडों का सहारा लेते है। खुद एकाध स्त्री को लूटकर कलंक का धब्बा दूसरे के माथे मढ़ा देते है। 'सुबह की तलाश' की गोंदा इसका उदाहरण है। गोंदा की कोक में छोटे ठाकुर का गर्भ होनेपर भी पंचायत में गोंदा को बुलाकर इसका दोष सोमेश्वर पर लगाया गया। गोंदा अपने को अपमानित मानकर तालाब में डूबकर मरने का प्रयास करती है।

राकेश वत्स के 'जंगल के आसपास' में चंदेरी की बेटी की चीख का असर पूरे गाँव पर नहीं हुआ। ''जैसे गाँव, गाँव न होकर कोई जंगली खंडहर हो। जिसके पथरीलें टीलों और बेजान भुरभुरीं मिट्‌टी के ढूहों में बनी खोहों के बीच इन्सानों की बजाय रेंगनेवाले किड़े रह रहें हो।''[50] बेटी की चीख सूनकर चंदेरी लपककर बाहर आती हैं। तब उसे एक भूत ही छाया

झॉड़ियों के बीच भागती नजर आती हैं। बाकर और दोनों बेटे चंदेरी को अंदर खींचकर झट-से दरवाजा बंद करके साकल चढ़ा लेते हैं। वह अपने पल्लू का एक टुकड़ा तीनों मर्दों के हीजड़ियाँ हाथों में छोड़ बदहवास-सी गलियारें की तरफ उतर जाती हैं। वह सरपंच से जाकर कहती है कि, ''सुबह क्या मिलेगा ? तब तक तो वह उसकी हड्डियाँ तक चबा डालेगा।''[51] चंदेरी हाथ फैलाकर सरपंच का गिरेबां पकड़ लेती हैं। फिर भी कोई भी मर्द उसकी मदद करने नहीं आता। चंदेरी के पास जितना साहस होता हैं, वह किसी और के पास नहीं होता हैं।

इस उपन्यास में नारी के बारे में ओझा रहिम की तरफ देखकर बताता है अग्नि-परिक्षा एक धार्मिक काम हैं। रामायण काल से ही हमारे देश में वह चला आ रहा हैं। माँ सीता को भी तो अग्नि-परीक्षा देनी पड़ी थी। अगर परीक्षा देते हुए कोई औरत जल जाती है, तो यह देवता की मर्जी से होता हैं। इसमें हम या आप कुछ नहीं कर सकते। यहाँ पर कठोर लोगों की कठोरता से दुनिया भरी पड़ी हैं, यह स्पष्ट होता हैं।

उपर्युक्त विवेचन से दिखाई देता है कि, नारी का शोषण ठाकुर, जमींदार, पुलिस, नेता लोग, परिवार, समाज आदि द्वारा हो रहा हैं। इन नारियों में शोषण के खिलाफ विद्रोह की प्रवृत्ति कम रही हैं। वह सामाजिक नीति, नियम, बंधनों में आबध्द हैं। आज धीरे-धीरे नई चेतना, विचार-धारा बह रही हैं। जिससे वहीं शोषित नारी अन्याय का विरोध कर रही हैं। इसी कारण भारत की बंदिनी नारी के शोषण में बदलाव की स्थितियाँ लक्षित होने लगी हैं।

8) यौन संबंध और अवैध धंधों की समस्या :-

आलोच्य आँचलिक उपन्यासों में वैध-अवैध यौन संबंधों की समस्या सर्वत्र व्याप्त हैं। लोग जीवन को बिताने के लिए, उदरपूर्ति के लिये ये लोग कई अवैध धंदे भी करते हैं। जंगल कटायी, जंगल से प्राप्त चीजों की बिक्री, टोकरी, सूप बनाना तथा छूँट-पूट धंदे भी करते हैं। साथ-ही-साथ कई लोग अवैध धंदों के सहारे जीविका चलाते हैं। उनका लक्ष्य उदर पूर्ति ही रहता हैं।

शिवशंकर शुक्ल के 'मोंगरा' (1970) में इस समस्या पर प्रकाश डाला हैं। छत्तीसगढ़ अंचल की नारियाँ पर-पुरूष के साथ भाग जाती है, अनेक मर्दों के साथ संबंध रखती हैं। धनऊ की डौकी घर से भागने पर जगन्नाथ बाबू कहता है - ''जब तक ये बहुत सारे मर्द नहीं बना लेती, तब तक उन्हें चैन नहीं पड़ता। इनमें और रंडियों में फर्क ही क्या हैं? इसलिए लोग इसे छत्तीसगढ़ कहते हैं।''[52]

छत्तीसगढ़ की नारियाँ एक पति को छोड़कर दूसरें को पति बनाकर उसके साथ संबंध प्रतिष्ठापित करती हैं। कई नारियाँ अपने पति के संग रहकर पर पुरूष से संबंध स्थापित करती हैं। नारी की मजबूरीयों पर प्रकाश डालते हुए धनऊ कहता हैं, ''शहराती औरतें वासना के कारण दूसरों पर डोरे डालती हैं। पर यहाँ की औरतें, काफी दुःख पाने पर ही अपने पति को छोड़ती है।''[53] यह कथन नारी के संबंध पर प्रकाश डालता है।

फिरन्ता चोरी-चोरी अफीम, गांजा बेचता हैं। इस अवैध धंदे के बल पर साफ कपड़े पहनता हैं, हर वक्त पान चबाता हैं। सोने की जंजीर गले में पहनता हैं। अंत में पुलिस के जाल में फँस जाता हैं। फिरन्ता के अवैध धंदे पर लगाम रखने का कार्य मोंगरा करती हैं। वह उसे ईमानदारी और परिश्रम का महत्व बताती हुई कहती हैं, ''दूसरा रास्ता है, ईमानदारी और मिहनत का। तुम पसीना बहाकर चार पैसे कमाओ। इससे अगर हमे नून-भात भी मिला तो उसे हम बड़े प्रेम से खाऐंगे।''[54] धीरज और मेहनत की संपत्ती का महत्व बतानेवाली मोंगरा एक प्रगतिशील नारी लगती हैं और फिरन्ता को अवैध धंदा करने से मना करती हैं।

डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्लजी के 'खारे जल का गाँव' (1972) में जंगल में चलनेवाले अवैध धंधों की बात उठायी है। ''जंगल से शीशम, महुआ चिरोंजी को बेचने का अवैध धंदा रात के अंधियारें में किया जाता हैं। लारी भर-भरकर लकडियाँ चोरी-छुपे बेची जाती हैं।''[55] इस अवैध धंदों को रोकने का कार्य फॉरेस्ट-गार्ड करता हैं। लेकिन अंत में उसे अपने प्राणों की बाजी लगानी पड़ती हैं। वह कहता है - ''अवैध बनोपज ले जाने के लिए मैं बैरियर नहीं खोल

सकता।''[56] गार्ड का यह कथन अवैध रूप में होनेवाली चोरीपर करारा व्यंग्य है, मगर उसकी हत्या हो जाती है। यह कडवी सच्चाई है। स्पष्ट है कि अवैध धंधे को रोकनेवाले की हत्या होती है, इस पर उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया है कि कई ऐसे पात्र, व्यक्ति है जो इसका अपने क्षमता के बलपर विरोध करने का महान कार्य कर रहे है।

नरेंद्रदेव वर्मा की 'सुबह की तलाश' (1972) में रणधीर नाम के छोटे ठाकुर का औरते नाम तक नहीं लेना चाहती। ''गाँव की औरतें उसका नाम लेकर थूँक देती है। क्या कोई ऐसा घर है? जहाँ के बर्तन इस कुत्ते ने जूठे नहीं किए है।''[57] जैसे हड्डी को देखकर कुत्ते के मुँह में पानी भर आता है, उसीतरह किसी औरत को देखकर रणधीर होश में नही रहता। गाँव की बहू-बेटियों के आँचल का सबसे मैला और बदनुमा धब्बा रणधीर है।

गोंदा के पेट में जो बच्चा पलता है वह छोटे ठाकुर का ही होता है। सोमेश्वर से शादी के लालच में गोंदा बुनियादी गुरूजी को फिजूल बदनाम करती है। '' क्या कहती हो बेटी ? ऐसा कौन-सा दु:ख था रो? क्यों कूद पडी थी तालाब में ?''[58] गोंदा पुरखिन को सब सच बता देती है।

यहाँ स्पष्ट है जमींदारों की अवैध यौन संबंध रखने की प्रवृत्ति रही है। इसकी शिकार ग्रामीण नारी, दलित युवती रही है। ज्यों इसका विरोध करेगी, उसका कत्ल करने का कार्य भी जमींदार करते हैं। नहीं तो यह नारी स्वयंम् खुदकुशी करती है। अवैध यौन संबंध का अंत मृत्यु ही लगता है।

राकेश वत्स के 'जंगल के आसपास' में चमार जात का नाथूराम फौज से निकाले जाने के बाद अपनी जन्मभूमि लौटता है। तब एक बंगालन अपनी बेटी को लेकर उसके साथ आती है तो गाँववाले कई वर्षों तक उन्हें स्विकार नहीं करते क्योंकि उन्हें कहीं से पता चलता है कि कलकत्ता में बंगालिन वेश्यावृत्ति का धंधा करती थी। लेकिन बाद में उसे बहुत से रूढ़ और निरंकुश लोगों की आपाधापी का शिकार होना पड़ा था। ''रायसाहब फतेहसिंह के वहशी

कारिन्दों के चंगुल से उसे ओझा ने ही बचाया था।''[59] यहाँ स्पष्ट है रायसाहब के काले कर्म को छिपाने का कार्य ओझा करता है।

एक करिन्दे का चेहरा देखकर श्यामा काँप उठती है। यह उसी भैंसे का चेहरा था, जिसने माँ पर हवस-भरा हमला किया था और उसे भी मार-मारकर अधमरी कर दिया था। वेश्यावृत्ति और छुआछूत जैसी खतरनाक बीमारियाँ, समाज के एक वर्गद्वारा दूसरे वर्गपर किए जा रहे अन्याय और पाश्विक अत्याचारों का ही नतीजा है। चेतनाहीन इंसान को जानवरी जिन्दगी जीने के लिए मजबूर किए जाने की भद्दी मिसाले है। आदिम युग की मायावी विचित्रताओं के गहरे गर्त से इंसान बाहर नहीं निकलेगा। ''श्यामा जैसी लड़कियाँ कूडे के ढेर की तरह खाद नहीं बनती रहेंगी, धर्म और समाज के ठेकेदारों के निहित स्वार्थों की जमीन की ।''[60]

यहाँ स्पष्ट है कि ग्राम अंचलों में यौन संबंधों में विविधता दिखाई देती है। विवाह बाह्य संबंध, एक से अधिक पुरूषों से संबंध, बूढ़ो के साथ अवैध संबंध, विवाहपूर्व संबंध आदि अनेकविध आयाम आलोच्य उपन्यासों में देखने को मिलते है। परिवर्तित कालानुसार इन यौन संबंधों में परिवर्तन होते आ रहे है। ग्रामजनजीवन में अशिक्षा, अर्थाभाव, गरीब, भूख के कारण अवैध धंधे भी बढ़ रहे है, तो दूसरी ओर धनवान व्यक्ति पुलिस, दरोगा, सरकारी अफसरों के साथ दात, काटी-रोटी का संबंध रखकर रिश्वत देकर अवैध धंधे को बढ़ावा दे रहे है ऐसा यहाँ लगता है। डॉ. रामदरश मिश्र के शब्दों में ''आज के उपन्यास, कहानीपर व्यक्ति की अहे तुक कामलीला को यौन-संबंधों का यथार्थ रूप मान लेते है और आधुनिक समस्या बनाकर उसे पेश करना चाहते है।''[61] यह कथन यहाँ यथार्थ लगता है।

9) जातीय भेदाभेद की समस्या :-

आज के जमाने में जातीयता भयावह बनती जा रही है। नई शिक्षा नीति के कारण इस भयावह समस्या में बदलाव की स्थितियों का निर्माण होता जा रहा है। इन अंचलों में स्थित

जनजातियों में समूह-जीवन तथा सामूहिकता होने के कारण वहाँ जातीय भेदाभेद का अधिक प्रश्न उभर नहीं पाता है परंतु कईं गाँवों में जातीयवाद की समस्या देखने को मिलती है। इन अंचलवासियों के अज्ञान, अंध:विश्वास और भोलेपन का फायदा उठाकर उन्हें लूटने का काम जमींदार, ठाकुर, महाजन आदि करते हैं। इन लोगों के कारण समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं।

पहाड़ी अंचलों के कई गाँवों में जातीयवाद की समस्या देखने को मिलती है। शिवशंकर शुक्लजी के 'मोंगरा' (1970) में चित्रांकित गाँव रइपुरा में छुआछूत के बंधन कडे नजर आते हैं। गाँव में अछूत चमार चरणदास को ब्राह्मण मंगलू द्वारा मूर्गी पालने के लिए किराए पर मकान देने पर गाँव में तहलकासा मच जाता हैं। मंगलू के इस कर्म पर प्रतिक्रियाएँ, ''अब मंगलू के घर कौन जाएगा ? ब्राह्मण पाड़ा में उसने चमार को बसा लिया। उसने छुआछूत का विचार नहीं किया। उसके घर में तो मोटियारी बहिनी विवाह के लिए बैठी हुई है। कल उसके घर में भात खाने के लिए कौन राजी होगा ? मनुष्य के उपर दु:ख तो आता हैं। पर उसे अपने धरम-करम को बरकरार रखना चाहिए।''[62]

मंगलू को ब्राह्मण लोग बहिष्कृत कर देते हैं। किसी प्रकार के समारोह में मंगलू को न्योता नहीं दिया जाता। केतकी को देखकर अन्य सवर्ण औरतें कहती हैं , ''अरी, तुम्हारे घर कौन बैंठने जाएगा ? वहाँ से आकर तो नहाना पड़ेगा। घर में तो चमार को रख लिया है। क्या तुम्हारे लिए सगे लोग मर गए थे?''[63]

जाति-पाति के अंतर्गत व्यवसाय के बंधन भी कड़े रहते हैं। एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति का कर्म नहीं कर सकता। यदि जाति बाह्य कर्म कोई करता तो उसे बिरादरी से खारिज कर देते। मंगलू ब्राह्मण होकर भी किसान के रूप में खेती में हल चलाता हैं। तब उसे बहिष्कृत किया जाता हैं। मंगलू का जाति बाह्य काम करने पर जाति-पंचायत निर्णय करती है कि मंगलू ने नागर चलाया हैं इसलिए उसे जाति से बाहर कर देना चाहिए। ब्राह्मण के घर में पैदा होकर नागर चलाना पाप हैं। यहाँ स्पष्ट है कि जाति के अंतर्गत कर्म बंधन भी इन लोगों में कड़े नजर आ रहे हैं।

डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्लजी के 'खारे जल का गाँव' (1972) में जातीय भेदाभेद की समस्या पर प्रकाश डाला हैं। मंदिर प्रवेश में छोटा-बड़ा, छूत-अछूत आदि पर यहाँ विचार किया हैं। प्रगतिवादी विचारधारा का सुग्रीव पंडित महाराज से कहता है - ''ई बड़कवा-छोटकवा यहाँ नहीं चलेगा। ई भगवान का दरबार हैं।''[64] अरविंद प्रगतिशील व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत हैं। सुग्रीव आंबेडकरी विचारों का वाहक लगता हैं। इस घटना को पढ़कर नासीक के कालाराम मंदिर में दलितों के प्रवेश की याद आती हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में दलितों का पनघट अलग रखा हैं। इसका वर्णन देखिए - ''बेवहारी गाँव में पूर बहाई मेड के पास जो घाट है उसका पानी नीच जाति के लोग ले सकते हैं, वहीं पर नहा-धो सकते है। उत्तरदायी मेड़ के पास का घाट ''ऊँची जतिहा'' हैं। इस ओर वे नहीं जा सकते।''[65] यहाँ जातीयता एवं भेदाभेद के दर्शन होते है।

सड़क के कारण गांव का बँटवारा हो जाता था। इसका वर्णन देखिए - ''जैसे तालाब के उस पार चमार, डोम, बसुहार, कौल बारी हैं। भीतर-भीतर ऊँची जाति के लोग रहते हैं। सड़क के भीतरी हिस्से में ब्राह्मण, बनिया, ठाकुर, कायस्थ रहते हैं। इस उपन्यास में अरविंद चमार के घर खाना खाता है, तो उसे बहिष्कृत किया जाता है। परंतु जातीय भेदाभेद के खिलाफ कदम उठानेवाला अरविंद कहता हैं ''मौका आयेगा तो उनके घर खाऊँगा । पर इससे आपको क्या?''[66] चमार के घर खाना खाने से अरविंद का ब्याह नहीं होता।

नरेंद्रदेव वर्मा के 'सुबह की तलाश' (1972) में पाठशाला में दलितों को अलग बिठाया जाता, उनका नामकरण भी भगवान के नाम पर करने को प्रतिबंध लगाया जाता हैं। एक मरार नामक हीन जाति के लड़के का नाम 'सोमेश्वर' होने के कारण प्रधान-अध्यापक उससे कहते है - ''वाह रे कलियुग आ गया। जात का मरार और नाम सोमेश्वर। मैं तो समारूँ कहूँगा, समारूँ।''[67]

पाठशाला में हीन जाति के लोगों को पिछे बिठाया जाता हैं। इतना ही नहीं मास्टर उन्हें छू तक नहीं सकते। उन्हें मंदिर प्रवेश निषिध्द माना जाता हैं। फगुवा ब्राह्मण इस बंधन को तोड़कर मरारों को मंदिर में प्रवेश देता है। इसपर क्रुध्द होकर लोग कहते हैं - ''देवता हरिजनों के दर्शन से अपवित्र हो जाती हैं। वह अपवित्र हो गयी।'' ब्राह्मणों की पंचायत जुडवाई और फगुवा को जाति भ्रष्ट घोषित करवाया। जातीयता के खिलाफ आवाज उठाने वाले फगुवा को बिरादरी से खारिज किया।

राकेश वत्स के 'जंगल के आसपास' (1980) में दमकड़ी गाँव में हरिजन महिलाएँ थी। उन्हें गाँव के पासवाले कूप से जल भरने का अधिकार नहीं था। हर रोज दोपहर के समय उन्हें पूरी पहाड़ी लाँघकर स्कूल के पास के जलप्रपात से ही जल भरने आना पड़ता था। यहाँ जातीय भेदाभेद का चित्रण होता हैं।

अत: स्पष्ट है कि, ग्राम जनजीवन में जाति-पाति के बंधन कठोर बनते जा रहे हैं। यहाँ मंदिर प्रवेश, खान-पान, विवाह संबंध, पनघट, पाठशाला प्रवेश, नामकरण, जाति-बाह्य काम आदि को लेकर जातीय भेदाभेद की खाईयाँ बढ़ने लगी हैं। इन खाईयों को मिटानेवाले अरविंद, सुग्रीव, फगुवा आदि आंबेडकरी विचारों के वाहक पात्र हैं किंतु उन्हें बिरादरी से खारिज किया जाता हैं।

जातीयता के कारण एकता खतरे में रही हैं। सांप्रदायिकता के मूल में जातीयता रही हैं। जब तक जड़ से यह जातीयता की भावना समाप्त नहीं होती तब तक सही अर्थ में राष्ट्रीय एकता संभव नहीं हैं। समाज सेवी संस्था, व्यक्ति के कार्य, शिक्षा प्रसार, सरकारी प्रयास, कानून सहयता के बल पर इसे हटाया, मिटाया जा सकता हैं। उपन्यासकारों ने भी अपनी-अपनी दृष्टी से उस पर विचार किया हैं ऐसा लगता हैं।

10) भ्रष्टाचार की समस्या :-

आजादी के पश्चात बनी समस्याओं में एक समस्या भ्रष्टाचार की हैं। राजनीतिक नेता, समाज सुधारकों ने इस पर सोचा है, तथा साहित्यिकारों ने इसे वाणी दी हैं। भ्रष्ट आचरण, अनैतिक कर्म, पाप की प्रवृत्ति, भ्रष्टाचार के मूल मे हैं। विकास के मार्ग में भ्रष्टाचार अडसर हैं। आज भ्रष्टाचार की शुरूआत सरकारी दफ्तरों से होती हैं, ऐसा कहा जाता हैं। साहित्य में भी इसके दर्शन होते हैं। आलोच्य उपन्यासों में भी प्रकाश डाला हैं। शिक्षित-अशिक्षित, नागरी, देहाती, सवर्ण, दलित सभी इस समस्या से पीड़ित हैं। बिना श्रम से धन कमाना, कार्य में सफलता पाना, अवैध रूप में कमाया हुआ धन सुरक्षित रखना, मान-सन्मान पाना, अवैध धंदों की रक्षा करना आदि कारणों से भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया जा रहा हैं। जमींदार, महाजन, साहुकार, सरकारी लोग, अफसर, दरोगा, ठाकुर, राजनीतिक नेता लोग इसमें अटके हैं। सामान्य, गरीब, ग्रामवासी दलित, पिछड़ी जन-जाति में भ्रष्टाचार दिखाई नहीं देता मगर भ्रष्टाचार से उनका शोषण हो रहा हैं। अत: यह एक समस्या बनी है।

डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल के 'खारे जल का गाँव' में पुलिस द्वारा भ्रष्टाचार करना चित्रित किया हैं। अरविंद द्वारा मजदूरों का जुलूस निकालना, अपनी माँगे पेश करना। जमींदार, पुलिस की मिली भगत होना। अंत में जुलूस पर लाठीयाँ चलना, फायर करना आदि घटनाएँ भ्रष्टाचार को दर्शाती हैं। इसका वर्णन देखिए, ''स्वतंत्रता के पच्चीस साल के बाद भी देश की पुलिस ने जिस वहशीपन के साथ लोगों को घसीट-घसीट कर मारा यह देखकर लोगों के मस्तक झुक गए।''[68] जंगल से अवैध रूप में कटाई करना, लकड़ी बेचना, अफिम बेचना, इसके पीछे भी भ्रष्टाचार ही पनप रहा हैं। इस पर भी यहाँ सोचा हैं।

नरेंद्रदेव वर्मा के 'सुबह की तलाश' में शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार पर प्रकाश डाला हैं। शिक्षा व्यवस्था में झूठी रसीद देकर पैसे ऐंठना, अध्यापकों को आधा वेतन देना, काम पर झूठी उपस्थिति दिखाना, आदि बाते इसके प्रमाण हैं।

राकेश वत्स के 'जंगल के आसपास' में दिनेश की नौकरी के लिए, किसी की मुठ्ठी गरम करनी पड़ती हैं तो जमींदारों ने अफसरों की मुठ्ठी गरम करके सड़क निर्माण के कारण जानेवाली अपनी जमीन सुरक्षित की। अतः स्पष्ट है, ग्राम जीवन में अलग-अलग ढंग से भ्रष्टाचार पनप रहा हैं। इसके ब्रम्हा ग्रामीण जन नहीं बल्कि अन्य लोग हैं परंतु शोषित दलित, ग्रामीण नागरी आदि रहे हैं। सरकारी सहायता से यह समस्या कम हो रही हैं। जब तक भ्रष्टाचार समाप्त नहीं होता तब तक देश का हित एवं विकास संभव नहीं हैं। राजनीतिक सहायता से भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया जा रहा है इस पर भी उपन्यासकारों ने प्रकाश डाला है।

11) अशिक्षा की समस्या :-

मानवी जीवन और जीवन विकास में शिक्षा का महत्व अधिक हैं। शिक्षा प्रसार का कार्य समाज सेवी संस्था, व्यक्ति तथा सरकार की तरफ से हो रहा हैं मगर अधिक मात्रा में सफलता नहीं मिली। महात्मा फुले, कर्मवीर भाऊराव पाटील, महर्षि शिंदे जैसे समाजसेवी व्यक्तियों ने अपना-अपना योगदान दिया हैं। सभी समस्याओं की जड़ अशिक्षा ही हैं। शिक्षा से गति और वित्त की प्राप्ती होती हैं। आज धीरे-धीरे शिक्षा का प्रसार हो रहा हैं। साहित्यिकारों ने अपनी-अपनी रचनाओं में इस पर प्रकाश डाला हैं परंतु देहातों में आज भी अशिक्षा की समस्या प्रभावी रही हैं। उसपर भी आलोच्य उपन्यासकारों ने सोचा हैं।

विंध्याचल, छत्तीसगढ़ जैसे इन अंचलों में यातायात की असुविधा, अज्ञान, दारिद्र्य और अंधःविश्वास के कारण अशिक्षा रही हैं। वहाँ के लोग भी अशिक्षा को मिटाने के लिए सहयोग नहीं देते हैं। लोग पढ़ाई के लिए तैयार नहीं होते हैं। उन्हें जबरदस्ती पढ़ाई के लिए भरती करवाना पड़ता हैं।

शिवशंकर शुक्ल के 'मोंगरा' (1970) में मंगलू तीन साल से बेकार पड़ा हैं। वह पढ़ा-लिखा था, इसलिए रायपुर में कभी-कभी लड़कों को पढ़ाने का काम करता था। पर उसे बंधी-बंधाई नौकरी नहीं मिल सकी थी। समारू का लिखना-पढ़ना रूक गया था और वह

मोंगरा को मैट्रिक से आगे नहीं पढ़ाता। अब उसके विवाह की चिन्ता मंगलू को सल रही थी। "जो लोग भूख से बिलबिला रहे हैं, वे भला शादी का इन्तजाम कैसे कर सकते थे?"[69] यहाँ स्पष्ट है, शिक्षित होकर भी रोजी-रोटी, विवाह की चिन्ता बनी ही रही हैं। लड़की के लिए शिक्षा की अपेक्षा विवाह का महत्व अधिक रहा हैं।

डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल के 'खारे जल का गाँव' (1972) में विंध्याचल के पहाड़ी अंचल में स्थित गाँव देवगांव, बेवहारी में अशिक्षा की समस्या पर प्रकाश डालने का काम किया हैं। अशिक्षा, अज्ञान को हटाने के लिए पढ़े-लिखे युवक प्रौढ़ शिक्षा का कार्य कर रहे हैं। यहाँ अरविंद जैसा युवक चमरहाटी में जाकर प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का काम करता है। दस-बारह प्रौढ़ों को दो-दो घण्टें पढ़ाकर फिर वापस घर आता है। इस कार्य को अज्ञान के कारण विरोध होने पर भी कुछ लोग इसमें जुट जातें हैं। उन्हें थोड़ा-थोड़ा अक्षर-ज्ञान हो पाया है। देवगांव, बेवहारी में जमुना मास्टर जैसे लोग हैं जो गाँव में कालेज खोलना चाहते हैं। यहाँ के परिवेश में पचास मील दूरी तक कोई कालेज न होने के कारण यहाँ के छात्रों को असुविधा होती है। गरीब लड़कों को पढ़ाई छोड़नी पड़ती है। इसलिए केसरवानी पंचायत महाविद्यालय की स्थापना करना आवश्यक मानती है। लगता है कि वहाँ का समाज आज शिक्षा के प्रति जागृत होने लगा है। "इन अंचलों में शिक्षा के रूप में नए प्रयास होने लगे हैं। इसलिए यहाँ केसरवानी कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय की स्थापना हुई।"[70] "विंध्याचल के पहाड़ी इलाके में आदिम गौंड 40% है और 80% अशिक्षा का प्रमाण है।"[71] इससे ग्रामों में स्थित अशिक्षा की मात्रा स्पष्ट होती है।

नरेंद्रदेव वर्मा के 'सुबह की तलाश' में छत्तीसगढ़ अंचल के अमोलीडीह में शिक्षा-दीक्षा, प्रचार-प्रसार का काम सोमेश्वर ने शुरू किया हैं। "कौसल्यादेवी उच्च माध्यमिक स्कूल के उद्घाटन के लिए आज सोमेश्वर प्रसाद सिंहजी यहाँ मौजूद हो चुके हैं।"[72] इसका चित्रण यहाँ पर मिलता हैं।

यहाँ की कौसल्यादेवी ने अपनी समस्त संपत्ती दान के रूप में शिक्षा प्रसार पर निछावर कर और उसी के नाम पर स्कूल का नामकरण भी किया गया। इस अंचल में प्राइमरी स्कूल के प्रसार पर बल दिया जा रहा हैं। स्कूल के शिक्षा-दीक्षा के ढाँचे में परिवर्तन भी चाहते हैं। यहाँ के लोग स्कूलों में नई शिक्षा की नीति को अपनाना चाहते हैं। कुटीर उद्योग योजना प्रधान, कृषी-प्रधान, शिक्षा-दीक्षा पर जोर दिया जा रहा हैं। बुनियादी शिक्षा, बागवानी शिक्षा पर बल दिया गया हैं।

राकेश वत्स के 'जंगल के आसपास' में दिनेश पाठशाला शुरू करता हैं। पाठशाला खोलने के बाद तो पहले दो चार दिन एक भी बच्चा नहीं आता। पाँच-सात दिन के बाद स्कूल में दो-चार बच्चे पढ़ने आते हैं। तो दिनेश उनको पहला सबक मौत और उसकी यातना से मुक्त होने के तरीकों के बारे में पढ़ाता हैं। वह छोटी-छोटी मिसालें देकर इन अनपढ़ बच्चों के दिल में यह बिठाने की कोशिश करता हैं कि, ''अच्छे काम के लिए बलिदान देने के जोश में आदमी को मौत की यातना बिलकुल नहीं सताती।''[73] अपनी इस बात को पुष्टि देने के लिए दिनेश दधिचि से लेकर सुखरात और जैन से लेकर भगतसिंह तक के बलिदान की कहानियाँ सुनाता हैं। स्कूल की हालत कुछ इस प्रकार थी। इसका वर्णन देखिए - टूटी-फूटी दिवारें उन्हीं दिवारों को किसीने हाथ तक नहीं लगाया था। तीन चांर जगह जहाँ पत्थरों का आकार बढ़ा था। कोयलें से बड़े-बड़े दाँतोवाले किसी डरावने राक्षस की आकृतियाँ बनी थीं। किसी-किसी आकृति के दो दाँत हाथी जितने लम्बे और पैने बनाए गए थे। ये सब बच्चों के हाथों की करामतें हैं। दिनेश अनुमान लगाता है और उन आकृतियों के माध्यम से वह बच्चों की मानसिकता को समझने की कोशिश करता हैं।

''पूरे डेढ़ महिनें में स्कूल सिर्फ डेढ़ दिन चला था और वह भी चार बच्चों को लेकर।''[74] बाद में दिनेश फैसला करता है कि, वह फिर से स्कूल शुरू करेगा। वह बच्चों को स्कूल के कमरे में न पढ़ाकर गाँव में ही जाकर पढ़ाएगा। सुबह एक गाँव और शाम दूसरे गाँव। इस तरह से उसका लोगों से मेल-जोल भी बढ़ेगा और उनकी जिंदगी को समझने का मौका भी

मिलेगा। दिनेश अशिक्षा के खिलाफ संघर्ष करना चाहता हैं। वह उसके लिए कुछ भी करने के लिए तैयार हैं। यहाँ स्पष्ट है दिनेश एक सेवाभावी पात्र रहा हैं।

यहाँ स्पष्ट है, ग्रामवासियों में शिक्षा के प्रति रूचि नहीं हैं। 'जंगल के आसपास' में गांव-गांव जाकर लोगों में रहकर शिक्षा देने की व्यवस्था बनाना, 'सुबह की तलाश' में बुनियादी शिक्षा तथा 'खारे जल का गाँव' में केसरवानी महाविद्यालय नई शिक्षा नीति का प्रमाण हैं। अत: आज देहातों में शिक्षा क्षेत्र में नए-नए प्रयोग हो रहे हैं, ऐसा लगता हैं।

12) निष्कर्ष :-

'हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में चित्रित दलित समस्याएँ' इस अध्याय में साहित्य और समस्याएँ, दलितों की समस्याएँ, जनआंदोलन की समस्या, अंधविश्वास की समस्या, अपशकुन की समस्या, शोषण की समस्या, नारी शोषण की समस्या, यौनसंबंध और अवैध धंदों की समस्या, जातीय भेदाभेद की समस्या, भ्रष्टाचार की समस्या, अशिक्षा की समस्या इन प्रमुख समस्याओं पर विस्तार के साथ सोचा हैं। इन समस्याओं के अतिरिक्त यातायात के साधनों की कमी की समस्या, बेकारी की समस्या, जंगली जानवरों से सुरक्षितता की समस्या, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, दलबदलाव की समस्या, अस्थायी जीवन की समस्या आदि समस्याएँ आलोच्य उपन्यासों में सम्मिलित हैं परंतु इन समस्याओं का विस्तार विस्तृत रूप में देखने को नहीं मिलता। इनके केवल संकेत जगह-जगह पर देखने को मिलते हैं।

'साहित्य और समस्याएँ' के अंतर्गत मानव जीवन से संबंधित, समाज से संबंधित समस्याओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया हैं। उनमें महत्वपूर्ण है, दलितों की समस्याएँ जो अज्ञान, जातीयता एवं भेदाभेद, धार्मिकता, अर्थाभाव, सामाजिक, राजनीतिक रूप को दर्शाती हैं।

आलोच्य आंचलिक उपन्यासों के माध्यम से जन आंदोलन की समस्या के अंतर्गत ठाकुर, जमींदार, महाजन, अंग्रेज सरकार, सरकारी अफसर आदि के विरूध्द ग्राम अंचलों में आज जन आंदोलन का निर्माण होने लगा हैं। अन्याय के खिलाफ संगठन बनाना, अन्याय के

खिलाफ न्याय माँगना, बिना वॉरंट बंदी बनाने को विरोध करना, देवी-देवता के दर्शन में भेदाभेद को मिटाना, बलिप्रथा को हटाना, ठाकुरों जमींदारों के खिलाफ आवाज उठाना, संगठन शक्ति के बलपर क्रांतिकारी मोर्चा बनाना, मोर्चा आयोजन करना, आदि जनआंदोलन के विविध आयाम इसमें लक्षित होते है। 'खारे जल का गाँव' का अरविंद, 'मोंगरा' की मोंगरा, 'जंगल के आसपास' की श्यामा आदि इसके उदाहरण है।

शोषण समस्या के अंतर्गत ठाकुर, जमींदारों द्वारा शोषण की समस्या, अंग्रेजों द्वारा शोषण की समस्या और नारी शोषण की समस्या आदि पर विचार किया है। जमींदारों, ठाकुरोंद्वारा होनेवाले शोषण के अंतर्गत जमींदारों द्वारा किसानों की जमीने हड़प करना, सूद के बदले किसानों से बेगार लेना, किसानों की गिरवी रखी हुई वस्तुओं का निलाम करना, किसान, मजदूरों के औरतों की अस्मत को लूटना, किसानों की झोपड़ियों को आग लगाना, उनकी पीटाई करना, उनकी फसलों को नष्ट करना, किसानों को हमेशा दबाव में रखना आदि प्रकार के शोषण आँचलिक उपन्यासों में दिखाई देते है। अज्ञान, अंध:श्रध्दा के कारण दलितों एवं ग्रामवासियों में शोषण की मात्रा अधिक है। इस शोषण के पीछे आर्थिक दयनीयता का भी प्रभाव है।

ग्रामजीवन एवं दलितों में आज भी अंध:विश्वास का प्रभाव है। यह भी एक समस्या बनी हैं। आलोच्य उपन्यासों में इस पर प्रकाश डाला है। इन गाँवों में अंध:विश्वास की मात्रा बढ़ती हुई दिखाई देती है। इसमें स्त्री के बाँझपन को हटाना, बिमारी को मिटाना, अच्छी फसल की पैदास करना, आँखो का फड़कना, छींक आना, बलि चढ़ाना, शरीर गोंदना, वस्तुओं का हाथ से गिरना, संकट से मुक्ति पाने के लिए देवी-देवताओं से प्रार्थना करना, अतृप्त एवं असंतुष्ट मृत आत्मा का भूत-पिशाच्च-चुडैल बन जाना, झाड-फूँक के माध्यम से मृतक को जिंदा करना, मंत्र-तंत्र और जादू-टोणा के बल पर भूत-पिशाच्च से मुक्ती पाना। इन्ही धारणाओं के फलस्वरूप इन लोगों में अंधविश्वास की समस्याओं का निर्माण होता जा रहा हैं।

आँचलिक उपन्यासों में नारी शोषण पर विस्तार के साथ चित्रण किया है। इसके अंतर्गत जमींदार, ठाकुर आदि द्वारा नारी से अवैध संबंधों की माँग करना, नारी के सौंदर्य को

नोंचना, जीवन साथी चुनने का अधिकार नारी को न होना, परिवार की सेवा करना, पति द्वारा बेरहमी के साथ पीटाई करना, मेहनताना के रूप में स्त्रियों की इज्ज़त को लूटना, परिवार के सदस्यों द्वारा शोषण होना, बहु विवाह की प्रथा के कारण असुरक्षित रहना आदि नारी शोषण के विविध आयाम आलोच्य उपन्यासों में देखने को मिलते हैं। आज भी अंचलों में नारी का घर-बाहर परंपरागत रूप में शोषण होता आया हैं ऐसा लगता है।

इन आंचलिक उपन्यासों में यौन संबंधों की समस्या पर गहराई से विचार किया गया है। इस समस्या के अंतर्गत विवाह पूर्व यौन संबंध, विवाह बाह्य यौन संबंध, बहुविध पुरूषों से यौन संबंध, अनमेल यौन संबंध, अवैध यौन संबंध, परिवार में स्थापित रिश्ते बाह्य यौन संबंध, परागा और ठाकुर का संबंध, जगन्नाथ और डौकी, बंगालीन और नाथुराम आदि के अवैध संबंध इसी प्रकार के है। अवैध संबंधों के विविध आयाम आलोच्य आंचलिक उपन्यासों में देखने को मिलते है। आज यौन संबंधों में टूटनशीलता लक्षित होने लगी हैं। अंचलों पर इसका असर हुआ हैं।

जातीय भेदाभेद की समस्या इस अंचल की एकता मे दरारें उत्पन्न कर रही हैं। जाती-बाह्य विवाह का विरोध, गोत्र-बाह्य विवाह को प्रतिबंध, जाती-बाह्य कर्म का विरोध, सांप्रदायिकता का आगमन, मंदिर, पाठशाला, पनघट पर भेदाभेद का प्रचलन, भगवान के नाम पर नामकरण करने का अछूतों को विरोध आदि विविध समस्याओं का चित्रण किया हैं। आलोच्य उपन्यासों में जातीय भेदाभेद के खिलाफ आवाज उठाकर एकता प्रस्थापित करना चाहते हैं। 'खारे जल का गाँव' का अरविंद, सुग्रीव इस बात के अच्छे उदाहरण है। इन दोनों पर आंबेडकरी विचारधारा का प्रभाव है। 'जंगल के आसपास' में भी इसके उदाहरण हैं। अवैध धंदे की समस्या के अंतर्गत जंगल में कच्ची शराब, गांजा आदि को बेचना, चोरी छुपे जंगल कटाई करना, लकड़ी बेचना आदि अवैध धंदे दिखाई देते है। उदर पूर्ति के लिए ये धंदे मजबूरी से करने पड़ते हैं। 'मोंगरा' की मोंगरा और 'जंगल के आसपास' का गार्ड अवैध धंधे का विरोध करनेवाले प्रगतिवादी पात्र लगते है।

भ्रष्टाचार की समस्या के अंतर्गत जमींदारों, ठाकुरों तथा महाजनों के साथ संबंध प्रस्थापित करके पुलिसों द्वारा भ्रष्टाचार करना, मजदूरों की झूठी उपस्थिति दिखाकर ठेकेदारों द्वारा भ्रष्टाचार करना, अध्यापकों को आधा वेतन देना, हिसाब-किताब की झूठी रसीदें दिखाकर शिक्षा संस्था संचालकोंद्वारा भ्रष्टाचार करना, जंगल कटाई करके अवैध मार्गसे लकड़ीयों को बेचना, राजनीति में भ्रष्टनीति को अपनाना, आदि भ्रष्टाचार के प्रकार भ्रष्टाचार की समस्या के अंतर्गत आते है। 'मोंगरा', 'खारे जल का गाँव', 'सुबह की तलाश', 'जंगल के आसपास' आदि उपन्यासों में इस प्रकार का चित्रण हुआ हैं।

अशिक्षा की समस्या के अंतर्गत ग्राम अंचलों में शिक्षा-दिक्षा के प्रति अनास्था, शिक्षालयों की कमी के कारण इनमें अशिक्षा की मात्रा का बढ़ाना, स्कूलों मे तोड़-फोड़ कराना आदि बातें अशिक्षा की समस्या के अंतर्गत आती हैं। आज भी इन लोगों को शिक्षा का महत्व समझ में नहीं आ रहा हैं किंतु सरकारी विकास योजनाओं के माध्यम से धीरे-धीरे इन अंचलों में भी शिक्षा का प्रचार तथा प्रसार होने लगा हैं। 'खारे जल का गाँव', 'सुबह की तलाश' में शिक्षालयों, स्कूलों की सुविधा पर प्रकाश डाला गया हैं।

इन समस्याओं के साथ-ही-साथ यातायात की समस्या, पीने के पानी की समस्या, आवास की समस्या, स्वास्थ्य की असुविधा, बेरोजगारी की समस्या आदि छोटी-छोटी समस्याओं का यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है। उपन्यासकारों की दृष्टी से ग्राम जनजीवन तथा दलित जीवन की समस्याएँ यथार्थ रूप में चित्रित हुई हैं ऐसा लगता हैं।

इस प्रकार की समस्याएँ इन अंचलों में दिखाई देती हैं। अतः ग्राम जनजीवन समस्या और अभावों में अटका हुआ हैं। प्राकृतिक आपदा, जातीयता, भौतिक असुविधा, अशिक्षा, यातायात का अभाव, असहयोग आदि कई कारणों से समस्याएँ बढ़ रही हैं। सरकार की उदार नीति, जनसंगठन का सहयोग, समाजसेवी संस्था, व्यक्ति का कार्य एवं सहयोग जब तक मिलेगा तब तक समस्याएँ हल होगी। जब तक समस्याएँ रहेंगी तब तक विकास की गती धिमी रहेगी। रामराज्य का सपना, सपना ही रहेगा।

शिक्षासुविधा, जागृति, नयी शिक्षा नीति, प्रौढ शिक्षा प्रसार के कारण अज्ञान की समस्या हल होगी। अंधविश्वास की मात्रा कम होगी, जब धर्म की सही पहचान होगी, तब अनैतिकता अवैध धंदे समाप्त होंगे। सरकारी सहायता से ऋण सुविधा उपलब्ध होने से जमींदारों के शिकंजे से किसान को मुक्ति मिलेगी। आरक्षण की सुविधा होगी तो भ्रष्टाचार कम होगा। अतः स्पष्ट है, सभी समस्या की जड़ अज्ञान है। इसलिए साक्षरता, शिक्षाप्रसार सभी समस्याओं के लिए महत्वपूर्ण उपाय हैं। जब ग्रामवासी साक्षर होंगे तब ग्राम समस्याएँ समाप्त होगी, ऐसा मुझे लगता हैं।

संदर्भ

1) फ्रान्सीस-इ-मेरील, सोसायटी अँड कल्चर, इंगेल बुक एन्. जे. प्रेटाईस हॉल, इन्फो - 1957, पृ.56

2) संपा. सुषमा प्रियदर्शनी, हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. सं. 1972, दिल्ली, पृष्ठ 278

3) डॉ. रेवा कुलकर्णी, 'हिंदी के सामाजिक उपन्यासों में नारी', प्र. सं. 1994, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ 133

4) रामलाल विवेक, 'आधुनिक भारत के निर्माता - पंडित नेहरू', प्र.सं.1989, श्याम प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ 136

5) शिवशंकर शुक्ल, 'मोंगरा', प्र.सं.1970, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृ. 22

6) वही, पृष्ठ 27

7) वही, पृष्ठ 53

8) भगवतीप्रसाद शुक्ल, 'खारे जल का गाँव', प्र. सं. 1972, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 112

9) नरेंद्रदेव वर्मा, 'सुबह की तलाश', प्र.सं.1972, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 22

10) वहीं, पृष्ठ 104

11) राकेश वत्स, 'जंगल के आसपास', प्र.सं.1980, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 12

12) वही, पृष्ठ 13

13) वही, पृष्ठ 198

14) शिवशंकर शुक्ल, 'मोंगरा', प्र. सं. 1970, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 85

15) डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल, 'खारे जल का गाँव', प्र. सं. 1972, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 63

16) नरेंद्रदेव वर्मा, 'सुबह की तलाश', प्र.सं.1972, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 18

17) वही, पृष्ठ 24

18) वही, पृष्ठ 25

19) राकेश वत्स, 'जंगल के आसपास', प्र. सं. 1980, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 14

20) वही, पृष्ठ 9

21) शिवशंकर शुक्ल, 'मोंगरा', प्र. सं. 1970, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 35

22) वही, पृष्ठ 62

23) वही, पृष्ठ 96

24) डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल, 'खारे जल का गाँव', प्र.सं.1972, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 14

25) वही, पृष्ठ 24

26) वही, पृष्ठ 54

27) वही, पृष्ठ 24

28) वही, पृष्ठ 31

29) वही, पृष्ठ 76

30) वही, पृष्ठ 136

31) नरेंद्रदेव वर्मा, 'सुबह की तलाश', प्र.सं.1972, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 34

32) वही, पृष्ठ 45

33) वही, पृष्ठ 51

34) राकेश वत्स, 'जंगल के आसपास', प्र. सं. 1980, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 198

35) शिवशंकर शुक्ल, 'मोंगरा', प्र. सं. 1970, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 89

36) वही, पृष्ठ 90

37) डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल, 'खारे जल का गाँव', प्र. सं. 1972, स्मृती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 12

38) वही, पृष्ठ 76

39) वही, पृष्ठ 14

40) वही, पृष्ठ 85

41) वही, पृष्ठ 108

42) वही, पृष्ठ 82

43) डॉ. आशा मेहता, 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में वैचारिकता, प्र. सं. 1988, भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली, पृष्ठ 143

44) डॉ. रेवा कुलकर्णी, 'हिंदी के सामाजिक उपन्यासों में नारी', प्र.सं. 1994, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपूर, पृष्ठ 96

45) शिवशंकर शुक्ल, 'मोंगरा', प्र. सं. 1970, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली पृष्ठ 44

46) वही, पृष्ठ 70

47) डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल, 'खारे जल का गाँव', प्र. सं. 1972, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 76

48) नरेंद्रदेव वर्मा, 'सुबह की तलाश', प्र. सं. 1972,राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 12

49) वही, पृष्ठ 48

50) राकेश वत्स, 'जंगल के आसपास', प्र. सं. 1980, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 7

51) वही, पृष्ठ 8

52) शिवशंकर शुक्ल, 'मोंगरा', प्र. सं. 1970, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 30

53) वही, पृष्ठ 31

54) वही, पृष्ठ 70

55) डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल, 'खारे जल का गाँव', प्र. सं. 1972, स्मृती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 131

56) वही, पृष्ठ 131

57) नरेंद्रदेव वर्मा, 'सुबह की तलाश', प्र. सं. 1972, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 57

58) वही, पृष्ठ 139

59) राकेश वत्स, 'जंगल के आसपास', प्र. सं. 1980, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 19

60) वही, पृष्ठ 82

61) धर्मपुत्र, 3 फरवरी, 1976, पृ. 18

62) शिवशंकर शुक्ल, 'मोंगरा', प्र. सं. 1970, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 13

63) वही, पृष्ठ 16

64) डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल, 'खारे जल का गाँव', प्र. सं. 1972, स्मृती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 12

65) वही, पृष्ठ 20

66) वही, पृष्ठ 66

67) नरेंद्रदेव वर्मा, 'सुबह की तलाश', प्र.सं.1972, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 34

68) डॉ. भगवतीप्रससाद शुक्ल, 'खारे जल का गाँव', प्र. सं. 1972, स्मृती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 34

69) शिवशंकर शुक्ल, 'मोंगरा', प्र. सं. 1970, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 12

70) डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल, 'खारे जल का गाँव', प्र. सं. 1972, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 103

71) वही, पृष्ठ 105

72) नरेंद्रदेव वर्मा, 'सुबह की तलाश', प्र. सं. 1972, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 28

73) राकेश वत्स, 'जंगल के आसपास', प्र. सं. 1980, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 48

74) वही, पृष्ठ 160